सेगाँव का संत

श्रीमन्नारायण अग्रवाल एम्. ए.

सेगाँव का संत

लेखक
श्रीमन्नारायण अग्रवाल एम्० ए०
(प्रिंसिपल नव-भारत-विद्यालय, वर्धा)

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड,
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

१।।)
सजिल्द १।=)

सं० १९९९

एक रुपया
[सादी ।।।=)

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने देश के प्राण, त्याग-मूर्ति महात्मा गांधी के व्यक्तिगत जीवन-संबंधी कुछ रोचक संस्मरणों का उल्लेख किया है, साथ ही महात्माजी के सेगाँव-स्थित वर्तमान आश्रम का भी विस्तृत विवरण, वहाँ की रहन-सहन, नियम-धर्म आदि की चर्चा बड़े सुंदर रूप में की है। इसके अतिरिक्त उनकी दैनिक जीवन-चर्या, राष्ट्रमाता कस्तूरबा गांधी, सेठ जमनालाल बजाज, ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ारख़ाँ प्रभृति अन्य लोगों से संपर्क रखनेवाली बातों को बड़े आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। 'बापू' के राजनीतिक विचार, शिक्षण-योजना, अहिंसा-सिद्धांत और चरखा-प्रयोग पर कुछ नवीन प्रकाश डाला गया है, जिसका उल्लेख अब तक की प्रकाशित किसी भी पुस्तक में नहीं मिलेगा। सेगाँव के आश्रम में महात्माजी के व्यक्तिगत जीवन का आँखों-देखा वर्णन, उनका प्रत्येक छोटे-बड़े से स्नेह-पूर्ण व्यवहार, उनकी लोक-प्रियता का रहस्य बड़े सरल रूप में उपस्थित किया गया है। देश के सबसे बड़े नेता की जीवनी के ऐसे अंश प्रत्येक भारतीय के हृदय में गौरव की ज्योति जगाए बिना नहीं रह सकते। तपस्वी 'बापू' की जीवन-प्रगति देश-वासियों के लिये सर्वथा अनुकरणीय है। आशा है, हिंदी-संसार हमारी इस भेंट को समुचित आदर दे सकेगा।

कवि-कुटीर
लखनऊ, वसंत-पंचमी
१९३९

दुलारेलाल भार्गव

दो शब्द

इस पुस्तक के लेख 'सरस्वती' और 'विशाल भारत' में निकल चुके हैं। आख़िरी लेख 'हिंदुस्थान' के गत 'गांधी-अंक' में प्रकाशित हुआ था। कई मित्रों की इच्छा थी कि पूज्य गांधीजी तथा वर्धा-संबंधी मेरे लेख एक पुस्तक के रूप में छप जायँ, तो अच्छा होगा। इसलिये 'सेगाँव का संत' जनता के सामने उपस्थित है।

अगर इस पुस्तक से जनता को पूज्य गांधीजी के बारे में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त हो सके, और उनके जीवन की झलक मिल सके, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

'जीवन-कुटीर', वर्धा
५ । ११ । ३९

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

सूची

शेगाँव का संत

सेगाँव का संत

जय ! जय ! जय ! सेगाँव-संत !

जय ! जय ! जय ! सेगाँव-संत !

कहता है संसार 'महात्मा',
गाता है गुन-गान तुम्हारा,
किंतु झुका है माथा मेरा,
इसका तो कारण ही न्यारा !

सत्य, अहिंसा के मंदिर में
रहे सदा हो अटल पुजारी;
दलित, अकिंचन, अबल जनों के
चिर - सेवक, अनन्य हितकारी ।

निज शरीर को जला-जलाकर
आलोकित करते हो जग को;
सुलभ बनाते त्याग, तपस्या
से स्वदेश के दुर्गम मग को ।

कारण नहीं, किंतु यह कोई
मेरे तव गुण गाने का;
भेद और ही कुछ है, बापू,
अपना राग सुनाने का ।

विमल प्रेम-जल से तुमने नित
मनुज - हृदय को सींचा है;
संत, तुम्हारी मानवता ने
ही मुझको तो खींचा है!

रहो 'महात्मा' तुम सब जग के,
जग से कभी न हारूँगा;
मैं तो 'बापूजी' कहकर ही
तुमको नित्य पुकारूँगा।

सेगाँव का संत

कुछ वर्ष पहले सेगाँव को कौन जाता था? वर्धा से लगभग पाँच मील दूर इस छोटे-से गाँव में किसी प्रकार का आकर्षण न था। नीची-ऊँची, पथरीली और कहीं-कहीं पानी बरसने पर कीचड़ से सनी जमीन पर चलकर इस गाँव में जाना कौन पसंद करता था। लेकिन अब सेगाँव तो एक तीर्थ-स्थान बन गया है। जो कोई वर्धा आता है, वह सेगाँव जाने की बात पहले सोचता है। वहाँ मोटर, ताँगा, साइकिल वग़ैरा का जाना तो बहुत मुश्किल है ही, लेकिन किसी सवारी पर बैठकर इस स्थान पर जाना भी वर्जित है। अधिकतर तो लोगों को पैदल चलकर ही जाने की ठान लेनी पड़ती है। अगर कोई विशेष बात हुई, तो सेठ जमनालालजी की 'बैल-मोटर' गाड़ी माँग ली जाती है। लेकिन यह दौड़-धूप क्यों? केवल इसीलिये कि महात्माजी ने अपना डेरा इस गाँव में डाल लिया है। हाल में यह अफ़वाह उड़ गई थी कि महात्माजी योरप जा रहे हैं। लेकिन अब तो उनका योरप सेगाँव में ही निश्चित रूप से बन गया है।

एक दिन मैंने भी सेगाँव की यात्रा करना ठान लिया। साथ में सेठ जमनालालजी, श्रीमहादेव देसाई और जामिया-

मिलिया, दिल्ली की एक जर्मन महिला भी थीं। महिला-आश्रम की कुछ बहनों की भी एक टोली आगे-आग चली। वर्षा-ऋतु होने के कारण हम लोगों के पास कुछ छाते और बरसातियाँ भी थीं। एक थैले में कुछ भुने हुए चने भी रख लिए थे। तीर्थ यात्रा का सब साज़ पूरा था। रास्ते-भर हम लोग मनोविनोद करते हुए गए। एक स्थान पर तो काली मिट्टी इतनी मुलायम थी कि हमारे पैर क़रीब एक फ़ुट अंदर घुस गए। चप्पलों और जूतों को बड़ी कठिनाई से बाहर निकाला। बेचारी जर्मन महिला के मोज़ों और जूतों का तो पूछना ही क्या! कीचड़ होने के कारण सबको जूते या चप्पल अपने-अपने हाथ में ही लेने पड़े। जर्मन बाई ने काफ़ी हिम्मत से काम लिया। उनका हृदय सेगाँव और महात्माजी को देखने के लिये इतना उत्सुक था कि रास्ते की कठिनाई से उनके चेहरे पर किसी तरह की म्लानता नहीं आई। वह बड़ी हिम्मत से हम लोगों के साथ बराबर मुस्किराती हुई चलती रहीं। मुझे तो उनका साहस और प्रेम देखकर काफ़ी आश्चर्य हुआ।

लगभग डेढ़ घंटे बाद हम लोग महात्माजी की झोपड़ी के पास पहुँचे। यह झोपड़ी सेगाँव से कुछ ही दूर पर बनी हुई है। झोपड़ी के चारो ओर बाँस का हाता है। दूर से देखने में वह बड़ा सुंदर प्रतीत होता है। यह छोटी, साधारण, लेकिन सुडौल झोपड़ी बाँस और खपरैल से पटी हुई है।

चारो ओर छोटा बरामदा बना हुआ है। अंदर एक बड़ा कमरा है, जिससे लगे हुए रसोई और स्नान-घर बने हुए हैं। इस बड़े कमरे के एक कोने में महात्माजी बैठे थे। कुछ लिखने-पढ़ने का काम चल रहा था। हम लोगों को देखकर वह मुस्किराए—"अच्छा, जमनालालजी भी आए हैं! अगर आप रोज़ इसी प्रकार यहाँ आएँ, तो बदन काफ़ी हलका हो जायगा।" यह कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़े।

"हाँ, यहाँ आने का यही तो प्रसाद मिलेगा!" सेठजी ने मुस्किराकर कहा।

महात्माजी से जर्मन महिला का, जिनको 'अप्पा जान' कहते हैं, परिचय कराया गया।

"आप हिंदुस्थान में कितने दिन से हैं?"

"क़रीब चार साल से।"

"अच्छा, अब तो आपको कीचड़ और धूल की काफ़ी आदत पड़ गई होगी।" महात्माजी ने हँसकर कहा।

"जी हाँ, हम लोग भी तो अपनी जामिया-मिलिया को अब एक गाँव में ही ले जा रहे हैं।"

"यह तो बड़ी खुशी की बात है। हम सबको अब 'गँवार' बनना ही पड़ेगा।" महात्माजी ने मुस्किराकर कहा—"अभी तो आप यहाँ कुछ दिन रहेंगी न?"

"जी हाँ, मैं तो कुछ सीखकर ही जाना चाहती हूँ।"

"अच्छा, तो आपको मेरा और मीरा का, जिसकी झोपड़ी यहाँ से क़रीब डेढ़ मील पर है, मेहमान जरूर रहना पड़ेगा। आप जब चाहें, तब यहाँ आ सकती हैं।"

"इस कृपा के लिये मैं आपकी बहुत शुक्रगुज़ार हूँ।"

महात्माजी को पास से देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था। मैं तो उनकी आनंदमय खिलखिलाहट सुनकर दंग रह गया। मेरा विचार था, महात्माजी काफ़ी गंभीर और चुपचाप रहते होंगे। लेकिन उनकी बच्चों की तरह भोली और दिलखुली हँसी देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। 'महात्माओं' की तरह मुँह फुलाकर बैठना तो वह सह नहीं सकते। उनका तो यह कहना है कि मैं बिना हँसी और मज़ाक़ के ज़िंदा ही नहीं रह सकता। एक-एक बात में मज़ाक़ और विनोद भरा रहता है। और, अपनी सहृदय हँसी से वह सब लोगों में एक प्रकार का जीवन डालते रहते हैं।

थोड़ी देर बाद एक बड़ी मूछोंवाला बूढ़ा आदमी अंदर आया। बाद में मालूम हुआ कि वह सेगाँव का पटेल था। गांधीजी ने उससे हँसकर पूछा—"भाई पटेल, तो क्या मुझको ही अब दाढ़ी बढ़ानी पड़ेगी?"

"नहीं महात्माजी, नाई तो आपके पास हमेशा आने को तैयार है।"

"लेकिन मैं अपनी दाढ़ी उस नाई से कैसे बनवा सकता हूँ। क्या वह मेरे लड़कों की भी हजामत बनाने को तैयार

सेगाँव का संत

श्रीजमनालाल बजाज

श्रीजमनालाल बजाज
[जयपुर-जेल में]

है ? मैं तो यहाँ का सबसे बड़ा हरिजन हूँ, और मेरा कुटुंब भी है।"

काशी पटेल मुस्किरा दिया। लेकिन महात्माजी उसे छोड़नेवाले थोड़े ही थे।

"काशी पटेल, तुम्हीं बतलाओ। अगर तुम्हें एक ऐसी जगह बुलाया जाय, जहाँ तुम्हारे लड़के को जाने की मनाही हो, तो तुम क्या करोगे ?"

"महात्माजी, आप बेचारे पटेल को फंदे में डालते हैं।" जमनालालजी ने मुस्किराकर कहा।

"तो जब तक वह नाई मेरे हरिजन कुटुंब की हजामत बनाने को तैयार न होगा, मैं उसकी सेवा कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ?"

काशी पटेल फिर मुस्किराकर चुप हो गया।

"जमनालालजी, अगर पटेल को यह विश्वास हो जाय कि छुआछूत हटाने से वह सीधा स्वर्ग को जायगा, तो यह समस्या अभी हल हो जाय।" महात्माजी ने हँसकर कहा। हम सब लोग भी हँस पड़े।

"आप तो महात्मा हैं, जो चाहें, कर सकते हैं; लेकिन हम लोग तो......" काशी पटेल ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

"बापूजी ! काशी पटेल को आपका विश्वास थोड़े ही है। उन्हें तो स्वर्ग जाने का भरोसा कोई और ही दिलावे, तो काम चले।" जमनालालजी ने मज़ाक़ में कहा।

पटेल नमस्कार करके बाहर चला गया। स्वर्ग का लालच तो, सचमुच, बड़ी बुरी बला है।

मुझे बाद में यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि महात्माजी के बहुत कुछ कहने पर भी सेगाँव के लोग छुआछूत दूर करने को तैयार नहीं। शुरू में तो गाँव का नाई महात्माजी के पास रोज़ आया करता था, लेकिन जब से उन्होंने अपने हरिजन परिवार का राग छेड़ा, उसका आना बहुत कम हो गया। यह जानकर कि महात्माजी तो एक हरिजन लड़के का पकाया खाना खाते हैं, गाँव के लोग तो शायद उन्हें भ्रष्ट ही समझने लगे होंगे। फिर बेचारे नाई की हिम्मत उनके पास आने की कैसे पड़े? हाँ, संकोच-वश काशी पटेल के द्वारा आने को तैयार रहने का संदेशा कभी-कभी भेजता रहता है। लेकिन महात्माजी तो हमेशा से हठी रहे हैं। उन्होंने भी ठान लिया है कि जब तक छुआछूत दूर न होगी, वह वहाँ के नाई से काम न लेंगे। इसलिये आजकल उनकी सेवा 'सेफ़्टी-रेज़र' ही करता है।

यह भी पता चला कि सेगाँव में सेठ जमनालालजी का एक निजी कुआँ है। उन्होंने गाँव के हरिजनों को उसका इस्तेमाल करने की इजाज़त दे दी। लेकिन उनका निजी कुआँ होने पर भी वहाँ के सवर्ण हिंदुओं ने बड़ा शोर-गुल मचाया। आखिर-कार इस बारे में जमनालालजी को चुप ही रहना पड़ा।

गाँव के लोगों का यह मूढ़ विश्वास और पक्षपात कैसे हटे?

महात्माजी की भी लोग सुनने को तैयार नहीं। उनके .खुद गाँव में आकर एक झोपड़ी में रहने का वहाँ के लोगों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यह तो बड़े दुःख की बात है। लेकिन महात्माजी तो बड़ी शांति से काम करते हैं। उन्हें इस बात से कभी निराशा नहीं। वह तो कह देते हैं—"भाई, यह तो हमारा ही दोष है। हमने अपने हरिजन भाइयों के साथ वर्षों से इतना बुरा बर्ताव किया है कि हिंदू-धर्म का यह कलंक आसानी से न छूटेगा। हमने इतने दिनों से गाँववालों की कुछ भी परवा नहीं की। उन्हें नई ज्योति देने का कभी प्रयत्न नहीं किया। फिर हम एक ही दिन में उन्हें बदल देने की आशा कैसे कर सकते हैं ?

"और, मेरा तो एक और भी विचार है। हमारे काम करने की विधि में भी कोई ग़लती हो सकती है। मैं समझता हूँ, अगर गाँवों में सामाजिक सुधार करना है, तो पहले अलग-अलग लोगों के विचार बदलने से काम न चलेगा। हमें उन्हीं के समाज-सगठन द्वारा काम करना चाहिए। इस प्रकार यदि हम गाँवों के पंचायत-संगठन को सुधारें, और फिर पंचों द्वारा अपने विचारों का प्रचार करें, तो हमारा काम काफ़ी आसान हो जायगा। शुरू में तो लोग पंचायत के कहने से ही बुरी प्रथाओं को छोड़ेंगे। बाद में धीरे-धीरे उनके निजी विचारों का परिवर्तन हो जायगा।"

महात्माजी के जीवन की सादगी का मुझ पर बहुत प्रभाव

पड़ा। उन्होंने अपने आपको गाँव के जीवन में मिला दिया है। जो कुछ चीज़ इस्तेमाल करते हैं, वह, जहाँ तक होता है, गाँव से ही लेते हैं। फल इत्यादि वहाँ नहीं मिलते, इसलिये उन्होंने ज्वार की रोटी खाना शुरू कर दिया है। हाथ से बने काग़ज़ का प्रयोग करते हैं। उनका कमरा भी बहुत सादा है। किसी प्रकार का बनावटी दिखावा नहीं। लेकिन सादगी के माने भद्दापन नहीं। उनकी झोपड़ी में एक कला है, जिसे सब लोग शायद समझ भी नहीं सकते। मैं तो उनके कुटीर को एक जीती-जागती कविता कहूँगा। उसमें कितने गंभीर और भाव-पूर्ण विचारों की व्यंजना है। भारत की मुख्य समस्या का सजीव चित्र है। अब तो महात्माजी ने फ़ाउंटेन पेन का भी व्यवहार छोड़ दिया है। मामूली क़लम से ही अपना काम करते हैं। हमारी जर्मन महिला तो उनकी सादगी देखकर बिलकुल हैरान हो गई। कहाँ पश्चिम का भोग-विलास और कहाँ बापू का इतना सरल जीवन!

महात्माजी सेगाँव में जाकर क्यों बस गए हैं? कुछ लोगों का विचार है कि गाँव में बैठकर उन्होंने कोई अच्छा काम नहीं किया। इससे उनके काम में हर्ज होगा। लेकिन ऐसा विचार करना भारी भूल है। गाँव में बसकर महात्माजी यह दिखलाना चाहते हैं कि अब केवल लेक्चरबाज़ी और लिखने का समय गया। कभी-कभी गाँवों में जाकर व्याख्यान देने से कुछ काम न निकलेगा। जब तक हम गाँवों में बसकर वहाँ

के लोगों से एक न हो जायँगे, तब तक अंदर से सुधार नहीं कर सकते। उनकी झोपड़ी इसी विचार की सजीव मूर्ति है। अगर वह एक तीर्थ-स्थान बन गई है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन इस तीर्थ-स्थान पर जाकर केवल महात्माजी के दर्शन करने से तो कुछ पुण्य नहीं होगा। अगर वहाँ जाकर हम भी अपना ध्यान गाँवों की ओर ले जायँ, तो हमारा वहाँ का जाना सफल सिद्ध हो सकता है।

बापू का ग्रामीण जीवन

सभी लोग मानते और कहते हैं कि भारतवर्ष का केंद्र ग्राम हैं, और बिना ग्रामों की उन्नति किए हिंदुस्थान कभी जाग्रत् राष्ट्र नहीं बन सकता। किंतु इस सत्य की गहराई को अच्छी तरह समझनेवाले और ग्रामों के उत्थान के लिये कुछ ठोस कार्य करनेवाले लोग इने-गिने ही हैं। जब महात्मा गांधी ने वर्धा के 'सेगाँव'- नामक ग्राम में रहने की बात छेड़ी, तो हमारे क़रीब-क़रीब सभी नेता, जो दिन-रात देश-सेवा में लगे रहते हैं, बापूजी के विरुद्ध थे। उनका ख़याल था, गाँवों की कठिनाइयों और कष्टों से महात्माजी की शक्ति का ह्रास होगा, और उनके रचनात्मक कार्य को धक्का लगेगा। किंतु बापूजी सुनते तो सबकी हैं, करते हैं अपने मन की। वह मीरा बेन के साथ सेगाँव चल दिए, और वहाँ एक झोपड़ी में रहने लगे। हिंदुस्थान के पीड़ित गाँवों की हृदय-द्रावक पुकार बापूजी बहुत वर्षों से सुन रहे थे। अंत में उस पुकार ने उन्हें खींच ही लिया।

पहले तो गाँव से कुछ दूर उनके लिये केवल एक झोपड़ी बनाई गई। झोपड़ी में केवल एक ही बड़ा कमरा था और उसके चारो ओर दालान। बड़े कमरे के एक कोने में

बापूजी बैठा करते थे, दूसरे में कस्तूरबा और तीसरे में एक अन्य कार्यकर्ता। बाद में खाँ साहब अब्दुलगफ्फारखाँ के आने पर चौथा कोना उन्हें मिल गया। यदि कोई मेहमान आ जाता, तो झोपड़ी पूरी धर्मशाला बन जाती थी। अब तो कस्तूरबा और मीरा बेन के लिये अलग झोपड़ियाँ बन गई हैं, और अतिथियों के लिये भी एक गृह सेठ जमनालालजी की ओर से बन गया है।

कुछ महीने पहले बापूजी को मलेरिया-ज्वर आ गया था। स्वास्थ्य चिंता-जनक हो जाने के कारण उन्हें वर्धा के सिविल अस्पताल में ले जाया गया। लोगों ने फिर बापूजी से सेगाँव छोड़ देने का अनुरोध किया, किंतु इसका असर उलटा ही हुआ। बीमारी के बाद उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि सख्त बीमारी की हालत मे भी गाँव न छोड़ूँगा। अब उनका स्वास्थ्य ठीक है, और उनके कथनानुसार उनकी अच्छी तंदुरुस्ती का कारण यह है कि जहाँ उनका मन बहुत वर्षों से रहता था, वहीं उनका शरीर भी पहुँच गया है।

बापूजी के आज्ञानुसार मैं हर रविवार को सेगाँव जाने का प्रयत्न करता हूँ। वहाँ दिन-भर रहने के कारण उनके दैनिक जीवन को नजदीक से देखने का मौक़ा मुझे मिलता है। अधिकतर तो दूर के ही ढोल सुहावने होते है, किंतु बापूजी के जितने ही नजदीक रहने का अवसर मिले, उनके प्रति उतना ही प्रेम और श्रद्धा बढ़ती जाती है। उनके संपर्क में

आने के पहले मेरा खयाल था कि महात्माजी हमेशा बहुत ही गंभीर रहते होंगे। मुझ-जैसे व्यक्ति से बात करना भी पसंद न करेंगे, किंतु उनके समीप आने पर तो उनकी प्रफुल्लता, मनोरंजनता, मानवता और सहानुभूति ने मेरा हृदय खींच लिया। अब तो मैं उन्हें 'महात्मा' के रूप में न देखकर 'बापू' के रूप में ही देखता हूँ, और इसी में मुझे उनका अधिक गौरव दिखाई पड़ता है। मुझे तो बापूजी की गहरी और सच्ची मानवता ने ही आकर्षित किया है; और जिसमें मानवता नहीं, उसे तो मैं 'महात्मा' कहने के लिये तैयार भी नहीं।

बापूजी की ग्राम-सुधार-संबंधी विचार-धारा का ज़िक्र करने के पहले उनके दैनिक जीवन का हाल बतला देना ठीक होगा। सुबह चार बजे उठकर प्रार्थना करना तो उनका हमेशा का नियम रहा ही है। सुबह और शाम टहलना भी क़रीब-क़रीब वैसा ही अटूट नियम है। अब तो उनके टहलने के लिये ख़ूब खुला और विस्तृत स्थान है। वह ज्यादातर श्रीविनोबाजी के भाई बालकोबाजी की झोपड़ी तक, जो क़रीब डेढ़ मील दूर है, रोज सुबह और शाम जाते हैं। साथ में हमेशा कुछ लोग रहा करते हैं, जिनसे बापूजी विभिन्न विषयों पर बातें करते जाते हैं। अक्सर प्रत्येक रविवार को अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के विद्यालय के कायकर्त्ता सुबह सेगाँव जाते हैं, और क़रीब घंटे-भर बापूजी का प्रवचन

होता है। भिन्न-भिन्न कठिनाइयों से संबंध रखनेवाले प्रश्नों का वह उत्तर देते हैं।

सुबह का नाश्ता बहुत सादा, किंतु स्वास्थ्यकर होता है। पहले ताड़ों और खजूरों को काट डाला जाता था। अब बापूजी उनके रस का गुड़ बनवाते हैं। इसी गुड़ के साथ मोटे आटे का दलिया, छुहारे और गाय का दूध, यही नाश्ते की सामग्री होती है। नाश्ते के बाद बापूजी अपने पत्र-व्यवहार में लग जाते हैं। कुछ दिनों तक पंजाब की राजकुमारी अमृत कौर भी सेगाँव में रही थीं। वह बापूजी के पत्र-व्यवहार में सहायता देती थीं। वैसे तो श्रीयुत प्यारेलाल हमेशा साथ रहते ही हैं। श्रीमहादेव देसाई तो अभी मगनबाड़ी में ही रहा करते हैं, और कभी-कभी सेगाँव हो आते हैं। यदि कोई अतिथि आ जाता है, तो बापूजी सुबह उससे बातें कर लेते हैं। कभी-कभी गाँव के कुछ लोग आ जाते हैं, और उनके झगड़ों, दुःखों और बीमारियों की ओर भी वह ध्यान देते हैं। वैद्य तो अच्छे-खासे बन गए हैं। छोटा-सा दवाखाना भी बना रक्खा है। बापूजी क्या नहीं हैं? कौन-सी विद्या ऐसी है, जिसके संबंध में उन्होंने प्रयोग नहीं किए। हाल ही में साँपों के ऊपर भी प्रयोग कर डाला।

स्नान करके ११ बजे भोजन की व्यवस्था होती है। आश्रम की तरह भोजन में दो-एक उबले हुए शाक, कुछ फल (संतरा, टमाटर आदि), रोटी, दूध या दही, मक्खन, गुड़ आदि।

रहते हैं। रोटी पर कई प्रयोग किए गए हैं। भाप द्वारा डबल रोटी भी तैयार की जाती है, जो खाने में स्वादिष्ठ और आसानी से पचनेवाली होती है। सब लोगों को बापूजी स्वयं भोजन परोसते हैं। वह ख़ुद लहसुन को बहुत पसंद करते हैं, और यदि दूसरे लोग चाहते हैं, तो उन्हें भी देते हैं। मैंने एक बार उनसे पूछा—"लहसुन का गुण तो तामसिक बतलाया जाता है।"

उन्होंने उत्तर दिया—"यह बात तो वैष्णव-संप्रदाय की चलाई हुई है। आयुर्वेद में तो लहसुन की बहुत महिमा बतलाई गई है। हाँ, अगर उसका बहुत उपयोग किया जाय, तो तामसिक हो ही जायगा।"

खाने के साथ पानी नहीं दिया जाता। सब लोग अपने-अपने बरतन साफ़ कर लेते हैं। बापूजी तो जेल की तरह लोहे के बड़े कटोरे में ही भोजन करते हैं।

भोजन के कुछ देर बाद बापूजी क़रीब एक घंटा सोते हैं। उनका अनुभव है कि दिन में कुछ देर विश्राम करने से मनुष्य अधिक काम कर सकता है। तीसरे पहर फिर पत्र-व्यवहार होने लगता है। बापूजी हाथ के बने काग़ज़ का ही उपयोग करते हैं। साधारण काम के लिये आए हुए पत्रों के पीछे के कोरे काग़ज़ का भी उपयोग कर लेते हैं। उनकी मितव्ययता देखकर आँखें खुल जाती हैं।

आजकल सेगाँव में बाहर से इतने लोग मिलने आते हैं

कि अक्सर बापूजी का सारा समय उनसे बातें करने में ही चला जाता है। बापूजी नम्र तो इतने हैं कि प्रत्येक व्यक्ति से स्वयं मिलते और उसके सुख-दुःख की बातें सुनते हैं। बड़े पुरुषों की तरह वह अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को बीच में नहीं रखते। जनता से सीधा संबंध रखना उनका हमेशा स्वभाव रहा है। अक्सर मिशनरी भाई उनका इतना समय व्यर्थ की चर्चा में ले लेते हैं कि मुझे बड़ा दुःख होता है। पाँच मिनट माँगकर एक-एक घंटे तक बातें करते रहते हैं। बेचारे बापूजी नम्रता-वश उनसे बीच में बात समाप्त करने को कभी नहीं कहते। महादेव भाई यदि इस ओर ख़ुद ध्यान दें, तो अच्छा हो।

शाम को पाँच बजे भोजन की घंटी बजती है। ज़्यादातर कस्तूरबा ही सुबह और शाम भोजन बनाती हैं। इस उम्र में दिन-भर काम करते रहना प्रत्येक स्त्री का साहस नहीं हो सकता। भोजन के बाद बापूजी टहलने जाते हैं, और वापस आकर प्रार्थना होती है। प्रार्थना के बाद बापूजी जल्दी ही सो जाते हैं। वह हमेशा बाहर आसमान के नीचे ही सोना पसंद करते हैं, यह तो सबको मालूम ही है।

गांधीजी के दैनिक जीवन की कहानी तो मैंने कह दी। अब उनकी ग्राम-संबंधी विचार-धारा की झलक देना आवश्यक है। एक दिन मैंने पूछा—"आप भविष्य में हिंदुस्थान की किस प्रकार की सभ्यता चाहते हैं?"

"ग्रामों की सभ्यता।" बापूजी ने उत्तर दिया।

"ग्राम-सभ्यता से आपका क्या अर्थ है?" मैंने पूछा।

"मैं चाहता हूँ कि लोग ग्रामवासियों की तरह सरल जीवन व्यतीत करें। उनकी इच्छाएँ बहुत कम हों। वे भूमि पर परिश्रम करके अपने खाने के लिये अन्न, फल और शाक उत्पन्न करें। पहनने के लिये स्वयं सूत कात लें और वस्त्र बुन लें। लोगों के जीवन में कृत्रिमता न हो। उनके सब कार्य कला और संगीतमय हों, सब लोग सत्य और अहिंसा के पुजारी हों।"

मैंने कहा—"यदि स्वराज्य मिल गया, तो फ़ौज और पुलिस रखनी होगी, नहीं तो दूसरे ही दिन कोई अन्य राष्ट्र हमारे देश पर क़ब्ज़ा कर लेगा।"

"कोई भी राष्ट्र हमारे देश पर राज्य करके करेगा ही क्या? राज्य तो आर्थिक लाभ के लिये किया जाता है। यदि हमारा जीवन बिलकुल सरल और अहिंसामय हो जाय, तो हमारी क्या चीज़ छीनी जा सकेगी? कोई ज़मीन उठाकर थोड़े ही ले जायगा। अगर किसी अन्य राष्ट्र के लोग हमारे पास गाँवों में आएँगे, तो हम कहेंगे—अच्छा भाई, तुम भी हमारे साथ रहो। काफ़ी ज़मीन पड़ी है। तुम भी हमारे साथ परिश्रम करो, और ख़ुशी से जीवन व्यतीत करो। न हमको तुमसे कुछ ख़रीदना है, और न हमारे पास तुम्हारे लायक़ कुछ चीज़ देने को है। ऐसे लोगों पर राज्य करने से किसी को क्या लाभ होगा?" बापजी ने मुस्किराकर कहा—"आज

अगर भारतवर्ष के लोग मेरे आदर्श के अनुसार ग्राम-जीवन व्यतीत करने लगें, तो कल ही हमें बिना लड़ाई-झगड़ा किए स्थायी स्वराज्य मिल सकता है। लेकिन लोग सुन लेते हैं, मेरे आदेश को अमल में नहीं लाते, इसका मैं किसे दोष दूँ।"

"क्या भारतवर्ष में इस प्रकार की सभ्यता हो सकेगी?" मैंने पूछा।

"क्यों नहीं। हमारी पुरानी सभ्यता तो इसी प्रकार की थी, और फिर हो सकती है। अगर हमने पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण किया, तो हमारा भी वही हाल होगा, जो आज योरप का है।"

"क्या आपके आदर्श ग्राम-जीवन में मशीनों के लिये बिलकुल स्थान न रहेगा?"

"मैं मशीनों के ख़िलाफ़ नहीं हूँ, अगर वे मनुष्य को पराजित कर उसका मालिक न बन बैठें, और उसके जीवन को कला-हीन और भद्दा न बनावें।"

यथार्थ में संसार की समस्या न तो पूँजीवाद से हल होने-वाली है और न रूसी ढंग के साम्यवाद या इटली के फ़ासिस्ट-वाद से। सरल, अहिंसा-पूर्ण ग्राम-जीवन द्वारा हमारी सब जटिल, आर्थिक एवं नैतिक समस्याएँ आसानी से सुलझ सकती हैं। क्या भारतवर्ष इस सभ्यता को पुनः अपनाकर दूसरे राष्ट्रों को राह दिखलाएगा?

हम लोग समझते हैं कि बापूजी राजनीति से दूर भाग गए

हैं ; किंतु बापूजी ऐसा नहीं सोचते। एक दिन किसी भाई ने यह प्रश्न कर दिया—"क्या आपकी राय में हम लोगों को भी राजनीति में भाग न लेना चाहिए ?"

बापूजी मुस्किराकर बोले—"हाँ, शोर-ग़ुलवाली राजनीति में अभी भाग लेने की जरूरत नहीं। हमें तो गाँवों में बैठकर ठोस कार्य करना है। इस ग्रामोद्धार-कार्य को मैं रचनात्मक राजनीति मानता हूँ।"

सेगाँव में बापूजी गाँववालों की आर्थिक स्थिति सुधारने का दिन-रात प्रयत्न करते रहते हैं। ग़रीब किसान के पास कुछ अधिक पैसे कैसे आवें, इसी बात की चिंता उन्हें लगी रहती है। खजूर से गुड़ बनाने का उद्योग सेगाँव में शुरू हुआ है। मीरा बेन गाँव के कुछ लोगों से सूत कतवाती और उन्हें यथोचित मज़दूरी देती हैं। गाँव की सड़कें भी सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है। लोगों के लिये बापूजी एक छोटा-सा पुस्तकालय भी चला रहे हैं। गाँव के लोगों के स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। उनकी बुरी आदतें छुड़ाने की भी कोशिश हो रही है। बापूजी के आश्रम के कुछ लोग गाँवों में जाकर लोगों से दिल खोलकर मिलते-जुलते हैं। उनके सुख-दुःख का हाल सुनते हैं, और उनमें जागृति उत्पन्न करने की भरसक चेष्टा करते हैं।

बापूजी गाय के परम भक्त हैं, क्योंकि भैंस की अपेक्षा भारतवर्ष-जैसे कृषि-प्रधान देश के लिये गाय अत्यंत हितकर

है। उन्होंने अपनी झोपड़ी के पास एक गोशाला क़ायम की है; और वह चाहते हैं कि हिंदुस्थान के प्रत्येक गाँव में गोशाला स्थापित की जाय, ताकि किसानों को पीने के लिये दूध मिले और खेती के लिये अच्छे बैल मिलें। अपने व्रत के कारण बापूजी स्वयं तो बकरी का दूध पीते हैं; किंतु और लोगों से भैंस के बजाय गाय का ही दूध-दही इत्यादि उपयोग करने का अनुरोध करते हैं।

"बापूजी, आप हर रविवार को मुझे सुबह और शाम खाना तो खिला देते हैं; लेकिन कुछ काम भी तो बतलाइए?" एक दिन मैंने कहा।

"अच्छा, जो काम मैं बतलाऊँ, वह करोगे?" बापूजी ने हँसकर पूछा—"मेरे पास यहाँ कोई लिखने-पढ़ने का काम तो है नहीं।"

"लिखने-पढ़ने का काम तो मैं भी नहीं चाहता। हफ़्ते में एक दिन तो मज़दूरी ही करना पसंद करूँगा।"

"तब ठीक है। जो काम मैं कुछ समय के लिये रोज़ करने का प्रयत्न करता हूँ, वही तुम करो। खाद के लिये मिट्टी खोदनी है, और उसे बारीक छानना है। ठीक है न?"

"जी हाँ।" मैंने हँसकर कहा।

बापूजी हाथ के काम को केवल आर्थिक दृष्टि से ही उपयुक्त नहीं मानते। उनकी धारणा है कि हमारी आधुनिक शिक्षा-पद्धति में औद्योगिक शिक्षा न होने के कारण मानसिक

और शारीरिक, दोनो शक्तियों का ह्रास होता है। शारीरिक और मानसिक विकास साथ-साथ होना चाहिए, और यह दस्तकारी तथा उद्योग द्वारा बड़ी सफलता से हो सकता है। इसीलिये बापूजी गाँवों में जाकर केवल साक्षरता का प्रचार करने के विरुद्ध हैं। वह उद्योगों द्वारा ही गाँव-वालों की शारीरिक, आर्थिक और मानसिक वृद्धि करना चाहते हैं।

अंत में एक खेद-जनक बात भी सुना दूँ। बापूजी के सेगाँव में बसने पर भी वहाँ के लोग उनकी बातों पर अधिक ध्यान नहीं दे रहे हैं। कुछ दिन तक तो लोग दर्शन करने चले आते थे, लेकिन जब से बापूजी ने हरिजन-प्रश्न छेड़ा, लोगों का आना बहुत कम हो गया है। ग्राम-सुधार-संबंधी अन्य बातों को भी वे सुनने को तैयार नहीं, और बापूजी के काम को अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। इससे अधिक हमारे देश के लिये और कौन-सी शर्म की बात होगी।

बापूजी स्वयं तो ज़रा भी निराश नहीं होते और कहते हैं—"यह सब हमारे पापों का ही फल है। हमने सदियों से गाँवों की कुछ परवा नहीं की, और अब यदि गाँववाले हमारी बात न सुनें, तो कौन-सी दुःख की बात है, यह तो स्वाभाविक ही है।"

लेकिन हमारे देश का कितना दुर्भाग्य है कि महात्माजी-जैसे महापुरुष को भी आज सेगाँव-जैसे स्थान में लोग सुनने

को तैयार नहीं। दर्शन कर लेना तो सब जानते हैं, लेकिन कुछ रचनात्मक काम करने के समय बिरले ही आगे आते हैं। क्या इसी प्रकार हमारे भारतवर्ष का कल्याण होने-वाला है?

राष्ट्र-माता कस्तूरबा

कुछ महीने पहले की बात है। शायद रविवार था, क्योंकि उसी दिन मुझे अक्सर सेगाँव जाने का मौक़ा मिलता है। महात्मा गांधी की तंदुरुस्ती चिंता-जनक थी। कई नेता और कांग्रेस के मंत्री उन्हें देखने गए थे। मैंने इतनी भीड़-भाड़ में गांधीजी के पास जाना उचित नहीं समझा। सोचा, तब तक बा के पास ही थोड़ी देर बैठ लूँ। वह तो लीडरों से दूर ही भागती हैं। इस उम्र में भी उन्हें सेवा के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं। उन नेताओं की भीड़ में वह चुपचाप रसोईं-घर में बापूजी के लिये खाना तैयार कर रही थीं। खाना ख़ुद इसीलिये नहीं बना रही थीं कि अन्य कोई मदद करनेवाला न था, बल्कि इसलिये कि उनके रोम-रोम में मातृत्व और सेवा-भाव छलकता है। एक प्रेमल मा चूल्हे से दूर बैठकर घर के लोगों को भूखा देखना कैसे सहन कर सकती है। फिर वह तो राष्ट्र-माता हैं। अगर महात्माजी दिन-भर देश की विभिन्न समस्याएँ सुलझाने और दरिद्रनारायण की सेवा में लगे रहें, और एक भूखे तथा कंगाल राष्ट्र की माता-स्वरूप कस्तूरबा अपना अधिक समय चूल्हे के आस-पास ही बितावें, तो इसमें आश्चर्य ही किस

बात का। जिस देश के करोड़ों लोगों के लिये रूखी और सूखी रोटी का टुकड़ा ही जीवन है, उसकी माता के लिये तो चूल्हे से अधिक प्रिय शायद दूसरी जगह न होगी।

मुझे देखकर वह रसोईं-घर के बाहर आ गईं। मुस्किराकर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। लेकिन मैंने उनसे तुरंत पूछा— "बा, बापूजी की तबियत कैसी है?"

मेरा प्रश्न सुनकर वह तुरंत गंभीर और कुछ उदास-सी हो गईं। धीमे स्वर में बोलीं—"बापूजी आजकल बहुत थक गए हैं।"

"ये नेता लोग तो उनका पीछा ही नहीं छोड़ते।" मैंने थोड़ा मुस्किराकर कहा।

"नेता भी क्या करें?" उन्होंने मुस्किराकर कहा—"वे भी सब चक्कर में फँसे हैं। बापूजी के पास आना ही पड़ता है। फिर बापूजी तो ख़ुद उन्हें बुलाते हैं।"

"लेकिन बा, इस समय तो बापूजी को आराम की बहुत जरूरत है।"

"हाँ, उन्हें आराम तो जरूर चाहिए। इधर कई महीनों से उनका स्वास्थ्य बहुत नाज़ुक हो गया है। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता। सुना है, आज उन्हें ख़ून का दबाव बहुत हो गया है।"

उनके शब्दों में कितनी वेदना थी, कितनी चिंता थी, और कितना प्रेम था, यह तो शब्दों में लिखना कठिन है। वह

आदर्श मातृत्व की सजीव मूर्ति हैं। महात्माजी ख़ुद भी बहुत वर्षों से उन्हें माता के रूप में ही मानते हैं। और, वह महात्माजी से उम्र में भी कुछ महीने बड़ी हैं। जब महात्माजी लंका गए थे, तब किसी मीटिंग में एक सज्जन ने अनजाने पूछा भी था कि महात्माजी, आज आपकी मा नहीं आईं। उन्होंने मुस्किराकर उत्तर दिया था—"वह कस्तूरबा संसार के नाते मेरी पत्नी हैं। लेकिन आपका प्रश्न ठीक है, क्योंकि मैं उन्हें अब मा के रूप में ही देखता हूँ।"

यह तो हुई महात्माजी और जनता की दृष्टि। लेकिन हमें उनकी भावनाएँ भी समझनी चाहिए। वह आदर्श मा हैं। इसी से हम उनका आदर्श पत्नी का रूप देखना भूल गए हैं। एक हिंदू-स्त्री अपने पति को देवता के समान मानती और उसी की सेवा में अपना कल्याण समझती है। आज-कल तो इस आदर्श की हँसी उड़ाई जाती है, और समानता का बोलबाला है। लेकिन उन्हें तो महात्माजी-जैसे आदर्श पति मिले हैं, तब वह उन्हें देवता-स्वरूप क्यों न मानें? मैंने जब उस दिन महात्माजी के स्वास्थ्य के बारे में उनसे बातें कीं, तब मैंने पहली बार उनमें आदर्श पत्नी की झलक देखी।

लेकिन पत्नी की हैसियत से उन्हें कम कष्ट नहीं सहन करने पड़े। जिन्होंने गांधीजी की आत्मकथा पढ़ी है, वे जानते हैं कि महात्माजी के कड़े नियमों तथा आदर्शों का पालन

करने में उन्हें कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ी है। बीमारी की हालत में उन्हें महात्माजी के पानी और मिट्टी के प्रयोगों का ही सहारा लेना पड़ा। एक बार जब बापूजी ने उन्हें नमक छोड़ने के लिये कहा, तब वह झुँझलाकर बोलीं—"नमक छोड़ने के लिये तो आपसे भी कोई कहे, तो आप भी न छोड़ेंगे।" जब महात्माजी ने तुरंत नमक न खाने की प्रतिज्ञा कर ली, तब उन्हें कितना दुःख हुआ होगा, यह एक पत्नी का ही हृदय समझ सकता है। लेकिन महात्माजी के कठिन आदर्शों और प्रयोगों की आँच में तपकर उन्होंने कई बार अपूर्व दृढ़ता का भी परिचय दिया है। आफ्रिका में एक बार जब कस्तूरबा सख्त बीमार हो गई थीं, और डॉक्टर ने कहा कि उन्हें मांस का शोरबा देने की ज़रूरत है, तब महात्माजी ने उत्तर दिया—"मांस के शोरबे के लिये मैं तो इजाज़त नहीं दे सकता। लेकिन कस्तूरबा आज़ाद हैं। वह लेना चाहें, तो ज़रूर दीजिए।" पूछने पर उन्होंने दृढ़ता से उत्तर दिया—"मैं मांस का शोरबा नहीं लूँगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिला करती। आपकी (बापूजी की) गोद में मर जाऊँ, तो परवा नहीं, पर मैं अपनी देह को भ्रष्ट न होने दूँगी।"

विवाह के समय वह बिलकुल निरक्षर थीं। महात्माजी ने शुरू में उन्हें पढ़ाने की कोशिश की। लेकिन सार्वजनिक कामों में जल्दी ही फँस जाने से उनकी शिक्षा अधूरी ही

रह गई। आज भी उन्हें गुजराती का केवल साधारण और हिंदी का काम-चलाऊ ज्ञान है। जब कभी भाषण देने खड़ी होती हैं, तब गुजराती और हिंदी दो सहेलियों की तरह गले में हाथ डालकर साथ-साथ चलती हैं। हिंदी का ज्ञान बढ़ाने के लिये आजकल उन्होंने तुलसी की रामायण का कीर्तन शुरू किया है। लेकिन इस पढ़ाई-लिखाई में वह अधिक समय नहीं दे सकतीं, और शायद उन्हें ज्यादा रुचि भी नहीं। देश की विभिन्न पेचीदा समस्याओं का भी उन्हें अधिक ज्ञान नहीं। लेकिन उनको अशिक्षित कहना अपने अज्ञान का परिचय देना होगा। यद्यपि वह संसार की दृष्टि में अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है, तथापि उनके व्यक्तित्व के सामने धुरंधर विद्वानों और ज्ञानियों का माथा अवश्य झुकेगा। इसलिये नहीं कि वह महात्माजी की पत्नी हैं, बल्कि इसलिये कि वह सौजन्य, सुसंस्कृति, सरल और मीठे स्वभाव की मूर्ति हैं। उनका दिमाग़ तीखा है, हृदय अत्यंत सरल और प्रेम तथा सेवा-भाव से परिपूर्ण। उनका शरीर, इस ७० वर्ष की उम्र में भी, मज़बूत है। जिस व्यक्ति का शरीर, दिल और दिमाग़, तीनो सुंदर तथा स्वाभाविक रूप से विकसित हैं, उसे अशिक्षित कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है।

शुरू में तो मेरा झुकाव महात्माजी की ही तरफ़ हुआ था। जब मैं सेगाँव जाता, महात्माजी के ही जीवन को देखने और

समझने की कोशिश करता। मैं तो महात्माजी की मानवता से ही मुग्ध हुआ हूँ। माता कस्तूरबा से तो शुरू में मेरा अधिक परिचय भी न था। हाँ, ज्यों-ज्यों उनके अधिक निकट आने की कोशिश की, मेरा हृदय उनकी ओर खिंचता गया, और आज, जब मैं सेगाँव जाता हूँ, चाहे एक बार महात्माजी से न मिलूँ, उनसे मिले बिना कभी नहीं लौटता। इसका कारण है, और वह है उनकी सरलता। महात्माजी के सामने हम लोगों ने उनके व्यक्तित्व को अभी तक नज़दीक से पहचानने और समझने की कोशिश नहीं की है। लेकिन मेरा पक्का विचार है कि महात्माजी से स्वतंत्र उनका एक मनन करने योग्य व्यक्तित्व है। उनकी सहृदयता, भोलापन, सहानुभूति और प्रेम अनुभव करने से ही जाने जा सकते हैं। सेगाँव-आश्रम में महात्माजी से लेकर साधारण-से-साधारण व्यक्ति की प्रेम और सेवा-वृत्ति से चिंता करना, अपने कष्ट का ख़याल न करके सभी के दुख-दर्द का ध्यान रखना वही कर सकती हैं। एक बार बहुत दिनों तक उनके पैर में चोट रही। हड्डी भी शायद चटक गई थी। डॉक्टर ने चलना-फिरना मना किया था। तो भी उन्हें बिना सबका इंतज़ाम देखे चैन न था। सुख और आराम का ख़याल तो उन्हें कभी शायद होता ही नहीं। इतनी उम्र होने पर भी वह अपना सब काम ख़ुद कर लेती हैं। अपने लिये किसी की भी सेवा स्वीकार नहीं करतीं। सुबह से शाम तक उनका सारा समय काम करते

ही बीतता है। और, उनका सब काम शांति तथा स्वाभाविकता से होता है। उनके चेहरे पर मैंने कभी क्रोध की झलक भी नहीं देखी। उनको तो मैं एक आदर्श कर्मयोगिनी मानता हूँ। यह उनके कर्म-योग का ही फल है कि सेगाँव-आश्रम में सबसे अधिक उम्र होते हुए भी उन्हीं का स्वास्थ्य सबसे अच्छा है। पैर की उक्त चोट के समय डॉक्टर ने उनके पैर को देखकर कहा—"बा का साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं मालूम होता। उन्हें काफ़ी आराम चाहिए।"

महात्माजी हँसकर बोले—"डॉक्टर साहब, आप ग़लती पर हैं। मेरे आश्रम-भर में इन्हीं की तंदुरुस्ती सबसे अच्छी है। यह बहुत ही कम बीमार पड़ती हैं।" सब लोग मुस्किरा दिए। वह भी हँस पड़ीं।

आज हिंदुस्थान की स्त्रियों में जागृति फैल रही है। वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही हैं, और पर्दे से बाहर निकलकर जनता के सामने आ रही हैं। यह तो अच्छा ही है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिये स्त्रियों की तरक़्क़ी ज़रूरी है, लेकिन जब मैं वर्तमान पीढ़ी की युवतियों के जीवन की पुरानी पीढ़ी की महिलाओं के जीवन से तुलना करता हूँ, तब मुझे अक्सर शक हो जाता है कि आजकल की स्त्रियों की उन्नति 'उत्थान' है या 'पतन'। कॉलेजों से निकली हुई युवतियों का कृत्रिम जीवन और उनके कमज़ोर शरीर देखकर अक्सर निराशा की भावनाएँ मन में उत्पन्न हो जाती हैं। स्त्री-शिक्षा

का क्या उद्देश्य होना चाहिए ? अगर शिक्षा द्वारा हमारी बहनों के दिमाग़, दिल और शरीर, तीनो का ही स्वाभाविक विकास न हुआ, तो फिर इस स्त्री-शिक्षा की पुकार किस काम की ! इसलिये जब मैं स्त्री-शिक्षा की समस्या पर विचार करता हूँ, तब मेरे सामने माता कस्तूरबा की जाग्रत् मूर्ति आकर खड़ी हो जाती और मानो कहती है—"भारत की युवतियो ! आओ, मेरे पास आओ । तुम शिक्षा ग्रहण करने के बहाने भारत की संस्कृति से दूर मत भागो ।" जब मैं श्रीजमनालाल बजाज की ७५ वर्ष की वृद्धा माता को देखता हूँ, तब भी मेरे मन में इसी प्रकार के विचार आते हैं । वह भी, इतनी आयु की होती हुई भी, दिन-भर घर के काम में लगी रहती हैं, और आज भी कई घंटे तक सूत कातती हैं ।

मैं तो मानव-धर्म का पुजारी हूँ । जब किसी प्रेम और सहानुभूति से भरे मानव को देखता हूँ, मेरा हृदय गद्गद हो जाता है । माता कस्तूरबा में मानवता पूर्ण रूप से पुष्पित है ।

अगर हम सब इन दोनो विभूतियों को इसी नजर से देख सकें, और सच्चे मनुष्य बनने की कोशिश करें, तो संसार में कितनी शांति और प्रेम का संचार हो सके ।

सेगाँव की झाँकी

हिंदुस्थान में अँगरेजों की राजधानी दिल्ली है। वह साम्राज्यवाद की निशानी है। भारतवर्ष की ग़ुलामी का प्रतीक है, किंतु हमारी राष्ट्रीय राजधानी तो वर्धा है। शायद वर्धा को राजधानी कहना भी अनुचित होगा। वह तो राष्ट्र का तीर्थ है; हिंदुस्थान का हृदय है। भारत-माता का मंदिर है। इस मंदिर की झाँकी सेगाँव में देखने को मिलती है। और, यह तो स्वाभाविक ही है, जब कि राष्ट्र के प्राण बापू सेगाँव में ही विराजमान हैं।

बापू का आश्रम सेगाँव की बस्ती से थोड़ी दूर पर है। वर्धा-शहर से क़रीब पाँच मील का फ़ासला है। वर्धा से सेगाँव-आश्रम की ऊबड़-खाबड़ सड़क भी देखने लायक़ ही है। बरसात में तो सेगाँव जाने के लिये पैरों से अच्छी कोई सवारी नहीं है। और, सभी वाहन तो काली मिट्टी के अगम्य दलदल में फँसकर अंतिम साँस छोड़ देते हैं।

शुरू में बापूजी का यह सख़्त हुक्म भी था कि जिस किसी को उनके पास आना हो, उसको पैदल चलकर ही आना चाहिए। यह आज्ञा भावना की दृष्टि से तो ठीक थी ही; किंतु व्यावहारिक दृष्टि से भी ज़रूरी थी। अगर कहीं पक्की
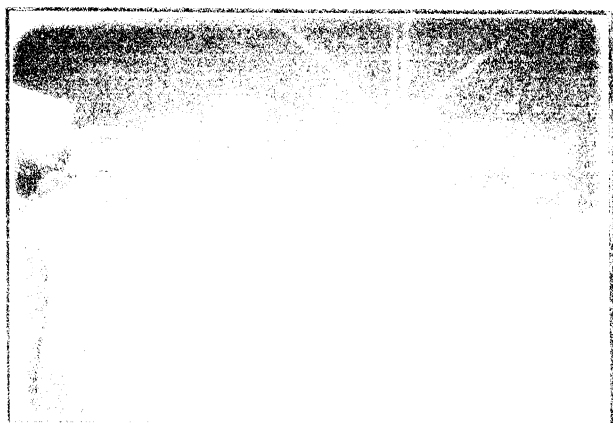
खान अब्दुल गफ्फार खाँ
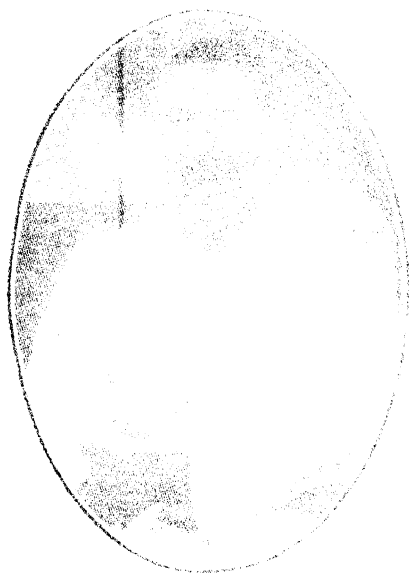
सड़क बन जाती, तो दिन-रात मोटरों का ताँता बँधा रहता, और बापू को तो फिर अपना डेरा उठाकर किसी दूसरे गाँव के लिये कूच करना पड़ता *।

सेगाँव-आश्रम में दिल्ली-जैसी आलीशान इमारतें नहीं, वहाँ तो केवल चार छोटी और कच्ची झोपड़ियाँ हैं। हिंदुस्थान के ६० प्रतिशत लोग तो आखिर इनसे भी बदतर झोपड़ियों में रहते हैं। फिर सेगाँव-आश्रम-जैसी राष्ट्रीय राजधानी होना उचित ही है। बापू की झोपड़ी ही आज राष्ट्र का कौंसिल-चेंबर है। उसी में देश की सभी प्रकार की जटिल और महत्त्व-पूर्ण समस्याएँ हल की जाती हैं। सभी मंत्री और नेता इसी कुटी में बैठकर बापू से सलाह-मशविरा करते हैं। इसी कुटी में लॉर्ड लोथियन-सरीखे अँगरेज़ चटाइयों पर बैठकर बापू से भारतवर्ष की राजनीति के बारे में चर्चा करते हैं। कुछ वर्ष पहले जब गांधीजी लॉर्ड अर्विन से मिलने दिल्ली गए थे, तो चर्चिल के प्रलाप से इँगलैंड का हाउस ऑफ़ कॉमन्स गूँज उठा था। "हमारे बादशाह के प्रतिनिधि वाइसराय से मिलने के लिये यह नंगा फ़क़ीर क्यों जाने दिया गया ?" इन्हीं शब्दों के अभिशाप का आज यह नतीजा है कि लॉर्ड लोथियन-जैसे पुरुषों को सेगाँव की सड़क पर दचके खाते हुए उसी लँगोटीवाले फ़क़ीर से मिलने जाना पड़ता है, और मिट्टी की कच्ची झोपड़ी में ही आराम समझकर रहना पड़ता है।

* हाल ही में अब एक पक्की सड़क बन गई है।

बापू के अहिंसक सत्याग्रह की क्या यह मामूली विजय है? फ़ैज़पुर के 'महाकुंभ' में गांधीजी ने घोषणा की थी कि अगर हम खादी, हिंदू-मुस्लिम-एकता और ग्रामोद्धार के कार्य-क्रम को पूरा कर सकें, तो वाइसराय को उनके पास गाँव में आकर घुटने टेक देने पड़ेंगे। आज उनकी भविष्यवाणी सत्य दिखलाई पड़ रही है।

शुरू में तो सेगाँव-आश्रम में एक ही कुटी थी, जिसके एक कोने में बापूजी, दूसरे कोने में कस्तूरबा, तीसरे कोने में मीरा बेन और चौथे कोने में बापूजी के सेक्रेटरी प्यारेलाल रहते थे। अगर कभी कोई अतिथि आ जाता था, तो उसी कुटी में, दीवार के सहारे, उसे भी बैठने को मिल जाता था। लेकिन अब तो चार झोपड़ियाँ बन गई हैं। एक में बापूजी रहते हैं, दूसरी में कस्तूरबा और तीसरी में अन्य आश्रम-वासी। चौथी झोपड़ी कभी-कभी अतिथि-गृह बन जाती है, और कभी बीमारों के लिये अस्पताल। प्रारंभ में आश्रम की गोशाला छोटी थी, अब तो वह भी काफ़ी बड़े परिमाण में स्थापित हो गई है। मलाई और मक्खन निकालने का छोटा यंत्र भी काम में लाया जा रहा है। आश्रम के चारो ओर बग़ीचा और हरे-भरे खेत भी दिखलाई देने लगे हैं। आश्रम के पास ही हिंदुस्थानी तालीमी संघ का कार्यालय भी बन गया है। इस संघ द्वारा वर्धा-शिक्षण-योजना का प्रचार किया जा रहा है।

बापूजी ने सेगाँव आने पर ही गाँव के लोगों से संपर्क

बढ़ाना शुरू कर दिया था। किंतु प्रारंभ में अधिक सफलता नहीं मिली थी। खासकर हरिजन-प्रश्न के बारे में गाँव के लोग बापूजी की बातें सुनने को तैयार न थे। अब धीरे-धीरे गाँव में हरिजनों के प्रति घृणा-भावना कम हो रही है, और लोग कताई-धुनाई की ओर भी अधिक ध्यान दे रहे हैं। आजकल गाँव के कुछ बच्चे और जवान लोग बापू के आश्रम में प्रतिदिन सूत कातने के लिये आते हैं, और काम के हिसाब से उन्हें कुछ आने मज़दूरी भी मिल जाती है। हाल ही में कताई और बुनाई के लिये बापू ने दो अलग कमरे बनवा दिए हैं। गाँव के नज़दीक खजूर के बहुत-से पेड़ हैं। सरकार से इजाज़त लेकर अखिल भारत-ग्राम-उद्योग-संघ की ओर से वहाँ खजूर के रस का गुड़ बनाना भी प्रारंभ किया गया है। शुरू में तो यह काम छोटे पैमाने पर ही किया गया था। गाँव के लोग भी उस काम में अधिक दिलचस्पी नहीं लेते थे; लेकिन अब धीरे-धीरे यह उद्योग-धंधा भी बड़े परिमाण पर चल रहा है; और गाँववाले भी उस काम में काफ़ी रस ले रहे हैं। बापूजी तो हमेशा यही चाहते हैं कि हमारे गाँवों में दस्तकारी का ख़ूब प्रचार हो, ताकि गाँव के लोगों की आर्थिक उन्नति हो सके। धन का प्रवाह शहर से गाँवों की ओर होना चाहिए। जब तक शहर की जनता गाँवों के बने हुए माल को नहीं खरीदेगी, तब तक हिंदुस्थान के ग़रीब किसानों और कारीगरों की आर्थिक और उसके साथ मानसिक तथा नैतिक

तरक़्क़ी नहीं हो सकती। हाँ, भारत में साम्यवाद स्थापित हो सके, तो दूसरी बात है। लेकिन जब तक अँगरेज़ी साम्राज्य हिंदुस्थान में क़ायम है, तब तक साम्यवाद के स्वप्न देखना निरर्थक है। इसीलिये बापू हिंदुस्थान की वर्तमान परिस्थिति को देखकर व्यावहारिक दृष्टि से ही कहते हैं कि हिंदुस्थान का स्वराज्य सूत के धागे में छिपा हुआ है। बापूजी गाँवों का प्रत्यक्ष अनुभव करने, ग्रामीण जनता की नब्ज़ पहचानने और गाँवों में उद्योगों का पुनरुत्थान करने के ख़याल से ही सेगाँव में रहने के लिये आए थे। इसलिये ग्राम-उद्योगों और विशेषकर कताई की ओर ही उनका ध्यान अधिक है। उनके आश्रम के 'उद्योग-मंदिर' की ओर गाँव के लोग धीरे-धीरे आकर्षित हो रहे हैं।

भारत की ग्रामीण जनता में इस तरह के रचनात्मक कामों का संगठन करना बाएँ हाथ का खेल नहीं। ग्राम-उद्योगों की ओर से गाँव के लोगों का काफी उत्साह न देखकर आश्रम के कार्यकर्ता तो कभी-कभी हताश हो जाते हैं; लेकिन बापूजी तो धैर्य और संतोष की मूर्ति हैं। निराशा तो उनके सामने थरथर काँपती है।

बापूजी रोज सुबह-शाम घूमने जाते हैं। तीन मील सुबह और शाम का घूमना तो उनका हमेशा का कार्य-क्रम है। कभी-कभी तो घूमते हुए वर्धा तक चले आते हैं। इन दिनों उनका स्वास्थ्य पहले की तरह अच्छा नहीं रहा है। ख़ून के दबाव के बढ़ने के कारण उनकी तंदुरुस्ती पर काफ़ी असर पड़ा

है। आजकल तो उन्होंने अपनी ख़ूराक भी बहुत कम कर दी है। फिर भी इस उम्र में बापूजी की शारीरिक शक्ति देखकर किसे आश्चर्य न होगा। सुबह टहलने के बाद आजकल वह शरीर की मालिश करवाते हैं। यह उपचार डॉक्टरों ने ख़ून के दबाव को घटाने के लिये बतलाया है। मालिश के बाद स्नान करके बापूजी थोड़े फल और दूध का भोजन करके सो जाते हैं। लगभग एक घंटे बाद उठकर वह लेख, पत्र इत्यादि लिखने का काम करते हैं। तीसरे पहर ही लोगों से मिलते हैं। साढ़े पाँच बजे भोजन करने के बाद टहलने जाते हैं, और वापस आकर सात बजे प्रार्थना करते हैं, जिसमें गीता और रामायण का नियमित पाठ होता है। क़रीब नौ बजे सोकर सुबह चार बजे उठना तो उनका हमेशा का नियम है।

जब से कांग्रेस ने मंत्रिपद ग्रहण किया, बापू का काम बहुत बढ़ गया है। प्रतिदिन विभिन्न प्रांतों की सभी प्रकार की समस्याओं को सुलझाना कोई आसान काम नहीं। यद्यपि बापूजी कांग्रेस के चार आने के सदस्य भी नहीं हैं, फिर भी आज कांग्रेस के कार्यक्रम की पूर्ण जिम्मेदारी उन्हीं पर है। देश में कांग्रेस का कोई भी महत्त्व-पूर्ण कार्य उनकी सलाह के बिना नहीं होता। यह सब भार एक व्यक्ति किस प्रकार सँभालता है, यह तो आश्चर्य की बात है। लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि

बापूजी भारतवर्ष-जैसे विशाल राष्ट्र की जिम्मेदारी का भार सहन करते हुए अपने आश्रमवासियों की ओर इतना ध्यान किस प्रकार देते है। जिन्हें बापू के समीप रहने का मौक़ा मिला है, वे जानते हैं कि बापू अपने आस-पास के हरएक व्यक्ति के दुख-दर्द का कितना ख़याल रखते हैं। अगर कोई आश्रमवासी बीमार हो जाता है, तो फिर बापू सब कुछ छोड़कर उसकी सेवा में लग जाते हैं। ख़ुद ही उसकी मालिश करते है, ख़ुद ही उसको खाना देते हैं, और ख़ुद ही उसकी सारी देख-भाल करते हैं। जब लोग उनसे कहते हैं कि बापू आपको बहुत-से और काम हैं, बीमारों की सेवा और आश्रम की व्यवस्था में आप इतना समय क्यों देते हैं, तो उत्तर मिलता है—"क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ? अपने साथियों के दुख को बेठा-बैठा कैसे देखता रहूँ?" बापूजी की मानवता के इस पहलू को साधारण जनता नहीं जानती। देश में तो वह महात्मा के रूप में पूजे जाते हैं, लेकिन उनके पास रहनेवालों के लिये तो वह सर्वप्रथम 'बापू' ही हैं। और, ऐसे लोग यह भी अनुभव करते हैं कि महात्माजी की अपूर्व सफलता का रहस्य उनकी सहृदय मानवता ही है।

कस्तूरबा तो मातृत्व की सजीव मूर्ति हैं। सुबह से शाम तक आश्रमवासियों की फिक्र रखती हैं। भोजन की सारी व्यवस्था ख़ुद करती हैं, सत्तर वर्ष की उम्र में वह जिस मुस्तैदी से काम करती हैं, वह देखते ही बनती है। मीरा बेन

तो दिन-रात बापूजी की सेवा में ही लीन रहती हैं। उनकी सारी दुनिया बापूजी ही हैं। एक अँगरेज़ी ऊँचे घराने की पुत्री होकर भी वह जिस सादगी से रहती हैं, वह सचमुच बड़े ताज्जुब की बात है। जब इँगलैंड के लोग सेगाँव-आश्रम में आते हैं, तो मीरा बेन को देखकर वे बिलकुल चकित हो जाते हैं। राजकुमारी अमृतकुँवर भी अक्सर बापूजी के पास सेगाँव की सादी ज़िदगी बसर करने के लिये शिमले से आती-जाती रहती हैं।

सेगाँव-आश्रम के अन्य व्यक्तियों में से श्रीभंसालीजी जानने-लायक़ हैं। वह पहले गुजरात में किसी कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे। बाद में उन्होंने बापूजी के आदर्शों के मुताबिक़ अपना जीवन व्यतीत करना शुरू किया। श्रीभंसालीजी ने बहुत वर्षों तक कठिन तपस्या की। ज़मीन पर बिना किसी प्रकार के बिछौने के सोते थे, दिन में ज्यादातर सूत कातते थे, और केवल सूखा आटा और नीम की पत्ती खाते थे। बापूजी के अलावा वह किसी से बातचीत भी नहीं करते थे। आजकल बापूजी के अनुरोध से उन्होंने अपने भोजन में भी परिवर्तन किया है, और मौन का नियम भी छोड़ दिया है।

कुछ महीने से आश्रम में एक चीनी साधु भी रहते हैं। वह हिंदी और संस्कृत का अध्ययन करते हैं, और बापूजी के आदर्शों को समझने की कोशिश करते हैं। कदाचित् उनकी

जीवन-कहानी भी काफ़ी रोचक हो। लेकिन अभी तक मुझे उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं हुई।

आश्रम में केवल एक ही छोटा बालक है। वह है बापूजी का नाती (श्रीरामदास गांधी का पुत्र)। उसका छोटा नाम है कान्हा या 'कन्नू'। आश्रम के गंभीर वातावरण में उसकी उछल-कूद, शोर-.गुल और हँसी के विना बहुत शुष्कता प्रतीत होती है। 'कन्नू' कभी तो गोशाला के छोटे बछड़ों के साथ खेलता है, कभी कस्तूरबा से किसी चीज़ के लिये झगड़ता है, और कभी टहलते समय बापूजी को पकड़कर खींचता है।

हिंदुस्थान के सामने इटली और जर्मनी छोटे-से देश हैं; लेकिन उनके अधिनायक मुसोलिनी और हिटलर किस ठाट से विशाल इमारतों में रहते हैं। हिंदुस्थान की जन-संख्या तो दुनिया की आबादी का पाँचवाँ हिस्सा है; लेकिन उसके अधिनायक और महात्मा तो छोटी-सी कच्ची झोपड़ी में ही रहते हैं। पाश्चात्त्य देश के लोग तो सेगाँव-आश्रम प्रत्यक्ष देखे विना गांधीजी के सादे जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। इस अंतर का कारण इन अधिनायकों के दृष्टि-कोण का अंतर है। हिटलर और मुसोलिनी का बल बंदूक़ और गोले पर निर्भर है। गांधीजी का बल सत्य और अहिंसा पर अवलंबित है। उन्हें मजबूत क़िलों और पुलिस-दलों की जरूरत नहीं, क्योंकि वह अहिंसा के अटल पुजारी हैं।

हाल ही में डॉक्टर खरे के प्रकरण के सिलसिले में नागपुर के कई सौ विद्यार्थियों और नागरिकों ने सेगाँव पर धावा बोला। बापूजी से पूछा गया कि क्या उन्हें पुलिस की आवश्यकता है। उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया। वर्धा के अन्य कार्य-कर्ताओं को भी उन्होंने मदद के लिये आने से रोक दिया। उन्हें डर किस बात का? सत्य के पुजारी के लिये मृत्यु भी कोई चीज नहीं।

बापूजी का विश्वास है कि संसार की वर्तमान जटिल समस्याओं को हल करने के लिये ग्रामीण सभ्यता जरूरी है। हमें बिलकुल सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए। अपने शरीर-श्रम से अपना निर्वाह करना चाहिए, जिससे आर्थिक शोषण की जड़ ही कट जाय। आजकल गांधीवाद और समाजवाद का झगड़ा चलता है; लेकिन इस झगड़े का कारण अज्ञान है। गांधीजी तो साम्यवादी हैं ही, उनके आदर्श में तो शोषण की संभावना ही नहीं रहती। रूस के साम्यवाद में तो शोषण रोकने के लिये एक संगठित राज्य और पशुबल की जरूरत पड़ती है। गांधीजी के साम्यवाद में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है; स्वावलंबन रहता है, शांति रहती है। हिंदुस्थान में इस प्रकार की सरल और अहिसात्मक ग्रामीण सभ्यता थी, और फिर जाग्रत् हो सकती है। लेकिन आज-कल तो दुनिया स्थूल चीजों के पीछे दीवानी है। अपनी-अपनी इच्छाएँ कम करने के बजाय हरएक व्यक्ति खूब धन-

संग्रह करके विभिन्न प्रकार के आराम पाना चाहता है। इसी-लिये एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण कर रहा है। राष्ट्रों में परस्पर शस्त्रों की होड़ हो रही है, और युद्ध के भयंकर बादल चारो ओर गरज रहे हैं। रूस-जैसे साम्यवादी राष्ट्र भी साम्यवाद को क़ायम रखने के लिये अपने ही देश के नागरिकों को बंदूक़ों से उड़ा रहे हैं। इस सभ्यता का क्या फल होगा? अंत में शायद तोप और बारूद के गोलों के सिवा संसार में कुछ न बचेगा।

संसार चाहे आज गांधीजी के ग्रामीण साम्यवाद को न माने; लेकिन अंत में हमें या तो आत्महत्या कर लेनी पड़ेगी, या गांधीजी के सादे और स्वावलंबी जीवन के आदर्श को अमल में लाना पड़ेगा। क्या हम भारतवासी इस ओर गंभीरता-पूर्वक ध्यान देंगे?

सरहदी गांधी

"अब तो सेगाँव में गांधीजी और 'सरहदी गांधी' दोनो ही रहते हैं ; फिर देश का ख़याल सेगाँव की ओर होना क़ुदरती ही है।" एक दिन मैंने ख़ाँ साहब से हँसी में कहा। पिछली बार जेल से छूटने पर वह महात्माजी के साथ ही कई महीने तक सेगाँव में रहे थे। मैं भी गांधीजी के आज्ञानुसार हर रविवार को सेगाँव जाता था, इसलिये मुझे ख़ाँ साहब के संपर्क में आने और उनसे बातचीत करने का मौक़ा मिला।

ख़ाँ साहब मेरी बात सुनकर ज़रा मुस्किराए; फिर गंभीर होकर बोले—"भाई, गांधी तो एक ही हैं, 'सरहदी गांधी' कोई नहीं। मैं तो मुल्क का एक मामूली ख़िदमतगार हूँ ; चाहे ख़ुदा का ख़िदमतगार समझो।"

ख़ाँ साहब के इन शब्दों में उनके सारे चरित्र और जीवन का सार भरा हुआ है। उनकी भाषा कभी दिखावटी नहीं होती, और जैसे-जैसे मेरा परिचय उनसे बढ़ा, मैंने उनके उन शब्दों को अक्षरशः सत्य पाया।

जिस दिन ख़ाँ साहब जेल से छूटकर वर्धा आनेवाले थे, उस दिन मैं भी स्टेशन पर गया था, क्योंकि पहले मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। स्टेशन पर काफ़ी भीड़ थी, लेकिन जब

ट्रेन आई, तब ख़ाँ साहब नहीं दिखलाई दिए। वह एक तीसरे दर्जे में सोए हुए थे। जब गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हो गई, तब वह उठे, और जल्दी से अपना बिछाने का मोटा चादर घरी करके डिब्बे के बाहर निकल आए। हम लोग उनका सामान निकालने के लिये उस डिब्बे के अंदर गए, लेकिन एक छोटी-सी गठरी के सिवा कुछ न पाया। ख़ाँ साहब ने जब भीड़ देखी, तब ज़रा सकुचाए, किंतु सेठ जमनालालजी को देखकर उनकी ओर तेज़ी से बढ़े, और उनको ज़ोर से गले लगा लिया। यह दृश्य देखने ही लायक़ था।

ख़ाँ साहब बहुत मोटी खादी का पाजामा और कुर्ता पहने हुए थे। सिर पर कुछ न था, और पैर में मोटे चमड़े की एक पुरानी चप्पल थी। बहुत दिन जेल में कष्ट उठाने के कारण उनका चेहरा पीला-सा पड़ गया था। ख़ाँ साहब और जमनालालजी साथ-साथ चले, और सारी भीड़ उनके पीछे धीरे-धीरे चली। स्टेशन से बाहर निकलकर दोनो नेता मोटर में रवाना हो गए।

ख़ाँ साहब की मेरे लिये यह पहली झाँकी थी। कितनी सरल, सुंदर और हृदयस्पर्शी थी, यह तो मैं ही जानता हूँ। मुहम्मदज़ई-जाति के ख़ान-परिवार में इनका जन्म, सन् १८९० में, हुआ। इनके पिता ख़ाँ साहब बेहरामख़ाँ उतमनज़ई के ख़ान (सरदार) थे। उतमनज़ई पेशावर-

ज़िले की चरसद्दा तहसील में है, और स्वात-नदी के किनारे वह एक बहुत रमणीक स्थान है। ख़ान के बड़े भाई डॉक्टर ख़ान साहब (जो सरहदी प्रांत के वर्तमान प्रधान मंत्री हैं) तो पंजाब-विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा पास कर और एक साल बंबई के ग्रांट मेडिकल कॉलेज में अभ्यास कर अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करने के लिये इँगलैंड गए थे। लेकिन ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ारख़ाँ का कई कारणों से अधिक अध्ययन न हो सका। वह मैट्रिक तक पढ़े। बाद में कुछ समय अलीगढ़ में रहकर उर्दू का अभ्यास किया। ख़ाँ साहब का स्वभाव शुरू से ही बहुत सरल और सेवा-परायण था। वह एक उच्च और धनी कुटुंब के होते हुए भी बहुत सादा जीवन व्यतीत करते है। महायुद्ध के बाद हिंदुस्थानियों की सेवा के फल-स्वरूप जब रौलट बिल आया, तब वह निःसंकोच उसके ख़िलाफ़ महात्माजी के आंदोलन में कूद पड़े। ख़ाँ साहब १९२० की नागपुर-कांग्रेस में शरीक हुए, और ख़िला-फ़त-आंदोलन में उन्होंने प्रमुख भाग लिया। नागपुर-कांग्रेस से लौटकर उन्होंने रचनात्मक कार्य की नींव डाली, और अपने गाँव उतमनज़ई में एक राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किया, जिसकी प्रांत-भर में शाखाएँ खोलने की योजना थी। उन्होंने १९२१ के सत्याग्रह-आंदोलन में यही रचनात्मक कार्य किया, और उसके लिये उन्हें कड़ी सज़ा भोगनी पड़ी। लेकिन परीक्षा ज्यों-ज्यों कड़ी होती गई, त्यों-त्यों उनकी राष्ट्रीय

भावना जाज्वल्यमान हुई। हिंदू और सिक्ख मित्रों से आत्मिक संबंध स्थापित करने के लिये उन्होंने जेल में ही गीता और ग्रंथसाहब का अध्ययन शुरू किया। शुरू मे गीता उनको कठिन मालूम हुई, बाद में अंडमन से आने पर पंडित जगतराम ने, सन् १९३० में, उन्हें गीता पढ़ाई, और उसी समय से उनका नाम 'सरहदी गांधी' पड़ा। सन् १९२४ से १९२९ तक हिंदू-मुसलमानों की तनातनी के समय में भी वह संकीर्ण सांप्रदायिक फंदों में नहीं पड़े। उनकी हमेशा यही धारणा रही कि यक़ीन और मुहब्बत ही इस्लाम है।

उतमनज़ाई में राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना के बाद वहाँ से अनेक कार्यकर्ता तैयार हुए। कुछ वर्षों बाद ख़ुदाई ख़िदमतगारों के नाम से जो विस्तृत संगठन हुआ, उसका श्रेय इन्हीं कार्यकर्ताओं को था। इन कार्यकर्ताओं को 'लाल कुर्तीदल' का नाम जान-बूझकर बदनाम करने को दिया गया। वास्तव में इन लोगों का एक स्वयंसेवक-दल बनाया गया था, जिसका उद्देश शुरू में केवल समाज-सेवा और संगठन ही था। इस दल ने सन् १९२९ में कांग्रेस के राजनीतिक आंदोलन में भाग लेने का निश्चय किया। इस दल में शामिल होनेवाले सदस्यों को निम्न-लिखित प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं—

१. ईश्वर, जाति और मातृभूमि के प्रति मैं वफ़ादार रहूँगा।

२. हमेशा और हर समय अहिंसक रहूँगा।

३. किसी ख़िदमत के बदले पुरस्कार की कोई आशा न रक्खूँगा।

४. निर्भय होकर किसी भी क़ुर्बानी के लिये तैयार रहूँगा।

५. शुद्ध जीवन बिताऊँगा।

एप्रिल, १९३० में ५०० से अधिक .खुदाई ख़िदमतगार नहीं थ, किंतु ख़ाँ साहब की गिरफ़्तारी से आंदोलन को प्रोत्साहन मिला। गोली और लाठी-कांडों के बाद यह संस्था अधिक लोक-प्रिय बनती गई। हिंसा का दोषारोपण करके सरकार ने इस आंदोलन को दबाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन ख़ुदाई ख़िदमतगारों की संख्या बढ़ती ही गई, और उनके द्वारा सारे प्रांत में अपूर्व जागृति हो गई।

ख़ाँ साहब के जीवन की एक अत्यंत मार्मिक घटना मुझे उनके एक पुत्र द्वारा मालूम हुई। जब ख़ाँ साहब हज के लिये गए थे, तब वहाँ ठोकर खाकर गिर पड़ने से उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। इससे ख़ाँ साहब को बहुत धक्का पहुँचा, और वह जीवन से निराश हो गए। अपने भविष्य के संबंध में बहुत सोचा, किंतु कोई रास्ता साफ़ नज़र न आया। अंत में एक रात को जब वह सोए, तब निश्चय किया कि जो स्वप्न उन्हें दिखाई पड़ेगा, उसी के मुताबिक़ वह अपनी ज़िंदगी बसर करेंगे। उसी रात को नींद में उन्होंने आवाज़ सुनी 'इन्क़िलाब आ रहा है, उठो।' ख़ाँ साहब ने उसी समय अपने देश में

लौट जाने का निश्चय किया, और अपनी पूरी शक्ति समाज के संगठन और जन-सेवा में लगाने का व्रत ले लिया।

ख़ाँ साहब शुरू से सेवा-वृत्ति के तो थे ही, इस इन्क़िलाब की आवाज़ को उन्होंने ख़ुदा का पैग़ाम समझा, और '.ख़ुदाई ख़िदमतगार' बन गए। इसीलिये वह अपने को हमेशा देश की जनता-रूपी .ख़ुदा का सेवक समझते हैं। कभी नेता के रूप में अपने को नहीं रखना चाहते। उनके जीवन की उत्कट धार्मिकता किसी से छिपी नहीं रह सकती। यद्यपि वह कट्टर मुसलमान नहीं, तो भी इस्लाम के नमाज़ इत्यादि सब नियमों की बराबर पाबंदी करते हैं। उनका जीवन प्रार्थनामय है, और उनकी रग-रग में सेवा-भाव और प्रेम भरा हुआ है।

एक दिन सेगाँव में देश की सामाजिक परिस्थिति पर बातें होने लगीं। मैंने कहा—"छुआछूत का प्रश्न तो हमारे गाँववालों के लिये बहुत कठिन है। बापूजी के होते हुए भी सेगाँव में कोई अंतर नहीं हुआ। वे छुआछूत हटाने की बात ही नहीं सुनना चाहते।"

"मैं तो महात्माजी से कहता हूँ कि छुआछूत का प्रश्न इस तरह शांति से हल नहीं होनेवाला है। हमारे लोगों में और भी बहुत-सी बुराइयाँ हैं; समाज अंदर तक बीमारी से सड़ गया है। यह बीमारी इस तरह शांति से दूर नहीं होनेवाली है। जब तक एक दफ़ा सामाजिक बलवा या बाढ़ नहीं पैदा

होगी, और सारे कचरे को जला या बहाकर खत्म नहीं कर देगी, तब तक यह बीमारी दूर होनेवाली नहीं।"

खाँ साहब अहिंसा में विश्वास रखते हैं, किंतु अहिंसात्मक क्रांति चाहते हैं। शांति-पूर्वक, धीरे-धीरे सामाजिक कुरीतियों को हटाने का काम उन्हें पसंद नहीं। आख़िर वह पठान हैं न? सेगाँव में उनकी तबियत न लगती थी। अपने प्रांत में जाकर गाँवों में काम करने को उनका हृदय तड़फता रहता था। जब सरकार ने उनको अपने प्रांत में जाने की परवानगी दे दी, तब वह तुरंत अपने कार्य में लग गए।

दूसरी बार राजनीतिक चर्चा चल पड़ी। खाँ साहब ने कहा—"जानते हो, सरकार मुझसे क्यों डरती है? इसलिये नहीं कि मैं पठान हूँ, और तुम्हारे सब नेताओं से डीलडौल में बड़ा हूँ, बल्कि इसलिये कि मेरा काम गाँवों में होता है, शहरों में नहीं।"

"तो आपके प्रांत के शहरों में कुछ राजनीतिक काम ही नहीं होता?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जितना तुम्हारे दूसरे प्रांतों में गाँवों में काम होता है, उतना ही हमारे सूबे के शहरों में—वह 'नहीं' के बराबर समझो। यहाँ तो शोर-ग़ुल मचानेवाले चंद नेता हैं, जो शहरों में बड़े-बड़े लेक्चर देते, और अख़बारों में लेख लिखते हैं। इस अख़बारी हलचल का गाँवों में कोई पता भी नहीं लगता। लेकिन हमारे सूबे में राजनीतिक काम गाँवों से ही—मुल्क के

दिल से—शुरू हुआ है। जब दिल का ख़ून साफ़ हो जायगा, तब सारा शरीर भी जल्द ही तंदुरुस्त हो सकेगा। इसीलिये तो सरकार हमारे .ख़ुदाई ख़िदमतगारों से इतना डरती है। वह जानती है कि हम लोग ऊपरी शोर-ग़ुल मचानेवाले नहीं।"

थोड़ी देर चुप रहकर ख़ाँ साहब फिर कहने लगे—"हमारे नेता लोग आज़ादी की तलाश में इधर-उधर भागते हैं। कभी विलायत में जाकर अपनी माँग पेश करते हैं, कभी अपनी कठिनाइयों का हाल दुनिया के दूसरे मुल्कों से कहते हैं, और समझते हैं कि इस तरह का प्रोपेगैंडा करने से अँगरेज़ लोग डरकर हमें स्वराज्य दे देंगे। यह तो उस हिरन की-सी बात है, जो कस्तूरी के लिये चारो ओर दौड़ता फिरता है। मैं तो दावे के साथ कहता हूँ कि आज़ादी हमारे पास है, लेकिन हम उसे पाने को तरकीब नहीं जानते। हमें चाहिए कि अपने गाँवों में बैठकर ज़मीन पर मेहनत करें, और किसानों की ग़रीबी दूर करने की कोशिश करें। यह ठीक है कि स्वराज्य के बिना हम उनके सारे दुख दूर नहीं कर सकते, लेकिन अगर हमारे नेता गाँवों की ओर सचमुच ज़्यादा ध्यान दें, तो गाँववालों की माली और मानसिक हालत काफ़ी सुधर सकती है। अभी तो हमारा मुल्क क़रीब-क़रीब मुर्दे की तरह है। एक बार उसकी रगों में—यानी गाँवों में—.ख़ून दौड़ने लगा, तो फिर कौन-सी ताक़त हमारी आज़ादी छीन सकती है?"

ख़ाँ साहब काफ़ी गंभीर होकर थोड़ी देर चुप रहे। मौक़ा

पाकर मैंने पूछा—"हिंदू और मुसलमानों की बेइत्तिफ़ाक़ी के बारे में आपका क्या ख़याल है ?"

"कुछ लोग समझते हैं, हिंदू और मुसलमानों में इतना फ़र्क़ है कि दोनो में कभी इत्तिफ़ाक़ हो ही नहीं सकता। लेकिन यह तो एक बेसिर-पैर की बात है। आख़िर दोनो एक ही ख़ुदा के बंदे हैं। अपने-अपने मज़हब को ठीक तौर से मानकर भी दोनो मुहब्बत से क्यों नहीं रह सकते, यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर हम एक दूसरे के ज़्यादा नज़दीक आ जायँ, और एक दूसरे को समझने की कोशिश करें, तो कोई सबब नहीं कि हिंदू-मुसलमानों में इत्तिफ़ाक़ न हो। लेकिन अगर हम इस इत्तिफ़ाक़ के लिये एक तीसरे आदमी की तरफ़ देखते रहेंगे, जो हमें आपस में लड़ाते रहना चाहता है, और इसी में जिसका फ़ायदा है, तो हमें क़यामत तक इसी तरह मुर्दे की तरह सड़ता रहना पड़ेगा।"

ख़ाँ साहब का हिंदू-मुस्लिम-एकता में दृढ़ विश्वास है, और वह हमेशा कोशिश करते रहते हैं कि दोनो संप्रदायों में एकता बढ़े। उनकी भाषा भी 'हिंदुस्तानी' का एक सुंदर नमूना है। वह जहाँ तक हो सकता है, ऐसी भाषा बोलते हैं, जो हिंदू-मुसलमान सभी समझ सकते हैं। अगर किसी हिंदू मित्र से बात करते हैं, और उनकी समझ में कोई हिंदी शब्द नहीं आता, तो वह निःसंकोच उसके मानी पूछ लेते हैं, और एक दूसरे के अधिक नज़दीक

आने के लिये अपना शब्द-भांडार बढ़ाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

पठान लोगों के बारे में आम तौर से हम लोगों में बहुत ग़लतफ़हमियाँ हैं। साधारणतः पठानों को ख़तरनाक और अमानुषिक समझा जाता है, जो हमारे गाँवों में ग़रीब किसानों को ब्याज पर रुपया देकर उन्हें चूसते हैं, और सरहदी प्रांत में हिंदू-स्त्रियों का अपहरण करते हैं। अँगरेज़ी कहावत के अनुसार काली भेड़ें तो हरएक झुंड में रहती ही हैं, लेकिन उनके कारण सभी को बदनाम करना अनुचित है।

"सरहद में हमेशा सरकार और पठानों में लड़ाई क्यों चलती रहती है ?" मैंने एक दिन खाँ साहब से पूछा।

"यह अँगरेज़-सरकार की कूट-नीति के सबब से है। अँगरेज़-सरकार उत्तर-पश्चिम सरहद को विदेशी चढ़ाई से महफ़ूज़ रखने के लिये पठानों के देश को अपने क़ाबू में करना चाहती है, और वहाँ के बाशिंदों को हमेशा तकलीफ़ देती रहती है। ग़ुस्से में आकर पठान लोग भी अँगरेज़ों पर हमला करते रहते हैं। मैं यक़ीन दिलाता हूँ कि पठान बड़े नरम और सच्चे दिल के होते हैं। उनमें ताक़त और हिम्मत भी बहुत है। अपने को क़ाबू रखने की भी अजीब शक्ति है। पिछली राष्ट्रीय लड़ाई में वे अहिंसा का पालन कर सके, यह क्या कम ताज्जुब की बात है ? लेकिन अँगरेज़-सरकार तो उन्हें हमेशा बदनाम ही करती रहती है।"

खाँ साहब के नजदीक आकर कौन पठानों को प्रेम और मुहब्बत की नजर से न देखने लगेगा ?

हाल में जब खाँ साहब अपने प्रांत को वापस गए, तब उनका कितने जोर का स्वागत हुआ। सचमुच वह अपने प्रांत के विना ताज के बादशाह हैं, और उनके लिये वहाँ के पठान अपना सर्वस्व अर्पित करने को सर्वदा तैयार रहते हैं। इतने सीधे-सादे, मुहब्बत से भरे '.खुदाई खिदमतगार' के लिये किसे श्रद्धा न होगी ? सरहदी प्रांत क्या, आज तो सारा हिंदुस्थान उन्हें अपना राष्ट्र-पति बनाने को तैयार है। लेकिन वह तो जनता की खिदमत में ही अपना आनंद मनाते हैं।

गांधीजी की शिक्षण-योजना

जब वर्धा के मारवाड़ी-शिक्षा-मंडल और उसके अंतर्गत नव-भारत-विद्यालय की रजत-जयंती के अवसर पर एक राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् की योजना मैंने महात्मा गांधी के सामने पेश की, तो किसी को ख़याल न था कि यह शिक्षा-परिषद् देश के लिये इतनी महत्त्व-पूर्ण सिद्ध होगी। शुरू में तो यही विचार था कि कुछ शिक्षा-शास्त्रियों को आमंत्रित किया जाय, जो गांधीजी की स्वावलंबी शिक्षा-योजना के संबंध में विचार करें, और अपने अनुभव एक दूसरे को बतलावें। लेकिन महात्माजी ने इस परिषद् में अधिक लोगों को बुलाने का आदेश दिया। तदनुसार सब प्रांतों के शिक्षा-मंत्रियों तथा देश की विविध राष्ट्रीय शिक्षण-संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी आमंत्रित किया गया। इस प्रकार परिषद् का रूप और महत्त्व बढ़ जाने पर महात्माजी से प्रार्थना की गई कि वह अध्यक्ष-पद ग्रहण करें। यह प्रार्थना उन्होंने स्वीकार कर ली, और २२ तथा २३ ऑक्टोबर, १९३७ को वर्धा में यह परिषद् बहुत सफलता-पूर्वक हुई।

परिषद् के सामने महात्मा गांधी ने जो शिक्षण-योजना पेश की, वह देश के लिये नवीन, सामयिक और आशा-जनक

थी। उस पर दो दिन तक स्वतंत्र रूप से बिचार हुआ, और गांधीजी ने कमज़ोरी की हालत में भी वाद-बिवाद में पूरा भाग लिया। अंत में परिषद् ने एक व्यक्ति को छोड़कर महात्माजी की योजना को स्वीकार किया, और निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किए—

१. इस परिषद् की राय में देश के सब बच्चों के लिये सात वर्ष की मुफ़्त और लाज़िमी तालीम का इंतज़ाम होना चाहिए।

२. तालीम का ज़रिया मातृभाषा होना चाहिए।

३. यह परिषद् महात्मा गांधी की इस तजवीज़ की ताईद करती है कि इस तमाम मुद्दत में शिक्षा का मध्यबिंदु किसी क़िस्म की दस्तकारी होना चाहिए, जिससे कुछ मुनाफ़ा हो सके, और जो बच्चों में अच्छे गुण पैदा करे, और उनको जो शिक्षा-दीक्षा देनी है, वह जहाँ तक हो सके, इसी केंद्रीय दस्तकारी से संबंध रखती हो, और इस दस्तकारी का चुनाव बच्चों के मामूल का लिहाज़ रखकर किया जाय।

४. यह परिषद् आशा करती है कि इस तरीक़े से धीरे-धीरे अध्यापकों की तनख़्वाह का ख़र्च निकल जायगा।

उक्त प्रस्ताव में महात्माजी की शिक्षा-योजना के क़रीब-क़रीब सभी मुख्य अंग शामिल हैं, इसलिये उनके ऊपर एक-एक करके विचार करना उचित होगा।

पहले प्रस्ताव में कोई विशेष नई बात नहीं है। देश में प्राथमिक शिक्षा मुफ़्त और अनिवार्य होना चाहिए, यह तो

सभी लोग कहते आए हैं। किंतु महात्माजी वर्तमान प्राथमिक शिक्षा को नहीं चाहते। उनका ख़याल है, सात वर्ष से चौदह वर्ष तक शिक्षा लाज़िमी होना चाहिए, और इन सात वर्षों में एक दस्तकारी के अलावा विद्यार्थियों को वर्तमान मैट्रिक श्रेणी तक की—अँगरेज़ी को छोड़कर—योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

दूसरे प्रस्ताव की धारणा को भी सभी लोग स्वीकार करते और जानते हैं कि लॉर्ड मेकाले ने अँगरेज़ी माध्यम द्वारा जिस शिक्षण का निर्माण हिंदुस्थान में करवाया था, वह बिलकुल अवैज्ञानिक, निर्जीव और निकम्मा है। एक विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाकर हमारे देश के नवयुवकों की कितनी शक्ति बेकार गई है, और हमारी प्रांतीय भाषाओं की उन्नति में कितनी बाधा पहुँची है, यह किसी से छिपा नहीं। अँगरेज़ों को हिंदुस्थान में अपना राज्य चलाने के लिये पढ़े-लिखे क्लर्कों की आवश्यकता थी, और इसी मतलब से उन्होंने हमारी शिक्षा-पद्धति बनाई। हमें यह भी मानना पड़ेगा कि उन्हें इस क्षेत्र में पूर्ण सफलता भी मिली। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि अब भी हमारे विश्वविद्यालयों में बहुत-से प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी लॉर्ड मेकाले के फंदे से अपनी मनोवृत्ति को मुक्त नहीं कर पाए हैं, और जनता भी अँगरेज़ी को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व देती है! महात्माजी अँगरेज़ी-भाषा के ख़िलाफ़ नहीं। अगर अन्य योरपियन भाषाओं की तरह अँगरेज़ी भी एक ऐच्छिक विषय की तरह पढ़ाई जाय, तो उन्हें कोई आपत्ति न

होगी। लेकिन मातृभाषाओं को छोड़कर अँगरेज़ी द्वारा ही हमें सब शिक्षा दी जाय, यह तो किसी विचारशील व्यक्ति को सहन न होगा।

तीसरे और चौथे प्रस्तावों पर साथ-साथ विचार करना ठीक होगा, क्योंकि इन दोनो में गांधीजी की योजना का मुख्य विचार है। महात्माजी चाहते हैं, शिक्षण दस्तकारी द्वारा होना चाहिए, और उनका विश्वास है कि अगर बच्चों को शुरू से ही कोई दस्तकारी वैज्ञानिक ढंग से न सिखलाई जाय, तो उनके शरीर और दिमाग़ का साथ-साथ श्रम न होने के कारण दोनो की शक्ति का ह्रास होता है, और हमारे नवयुवकों में व्यावहारिकता तथा शारीरिक श्रम के प्रति प्रेम न होने के कारण देश में भयानक बेकारी बढ़ती जाती है।

हमारी शिक्षा-पद्धति में मानसिक और शारीरिक श्रम दोनो का ही स्थान हो, यह तो सभी शिक्षा-शास्त्री मानते हैं; किंतु दस्तकारी द्वारा अथवा किसी हस्त-कला को मध्यबिंदु बनाकर शिक्षा देने का विचार भारतवर्ष के लिये नया है। इस प्रकार का प्रयास डेन्मार्क में स्लॉयड-पद्धति द्वारा किया गया है। लेकिन महात्माजी एक क़दम और आगे बढ़ते हैं। वह कहते हैं कि हस्त-कला द्वारा शिक्षा देकर हम शिक्षण को बहुत कुछ स्वावलंबी बना सकते हैं—कम-से-कम शिक्षक के वेतन का ख़र्च विद्यार्थियों की बनाई हुई चीज़ों के बेचने से निकल सकता है। इस स्वावलंबी योजना को सफल बनाने के लिये

शुरू में सरकार को ही इन चीज़ों को खरीद लेना पड़ेगा, क्योंकि उन्हें खुले बाज़ार में बेचना कठिन होगा।

दस्तकारी द्वारा इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान, ड्राइंग आदि सभी विषय किस प्रकार सिखलाए जा सकते हैं, यह एक स्वाभाविक प्रश्न होगा। असल में इस प्रश्न का उत्तर इतना कठिन नहीं, जितना पहलेपहल मालूम होता है। बच्चों का यह स्वभाव होता है कि जो चीज़ उनके सामने होती है, उसके संबंध में जो ज्ञान उन्हें दिया जाता है, वह उनकी समझ में आसानी से आ जाता है, क्योंकि उसमें उनकी रुचि होती है, और उसकी ओर उनका पूरा ध्यान केंद्रित होता है। विषय के प्रति विद्यार्थियों में रस उत्पन्न करना ही शिक्षक का प्रथम कर्तव्य है। योरप की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में चित्रों, माडलों तथा सिनेमा द्वारा विद्यार्थियों में रस उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है, किंतु हिंदुस्थान के लिये यह पद्धति बहुत क़ीमती है। हमारे ग़रीब देश में तो प्रश्न यह है कि करोड़ों अशिक्षित बालक-बालिकाओं को सस्ते साधनों द्वारा किस प्रकार व्यावहारिक ज्ञान दिया जाय। इस कठिन समस्या को हल करने के लिये महात्माजी ने दस्तकारी द्वारा शिक्षण की योजना देश के सामने रक्खी है। उनका विचार है, प्रारंभ में तो तकली द्वारा कताई से ही इस नवीन योजना की बुनियाद डालनी होगी, क्योंकि तकली बहुत सस्ती है, और कपड़े की खपत भी आसानी से हो सकती है।

एक उदाहरण लीजिए। कातने के सहारे हम गणित तो आसानी से सिखला सकते हैं। बच्चा जब कातना शुरू करता है, तो तारों द्वारा उसे गिनती सिखलाई जा सकती है। फिर जब उसकी गति बढ़ने लगे, तब उसे त्रैराशिक के प्रश्न बतलाए जा सकते हैं। "एक बालक एक घंटे में ५० तार कातता है, तो दो घंटे में कितने तार कात लेगा?" उदाहरण के लिये एक प्रश्न हो सकता है। इसी प्रकार तकली-उद्योग के सहारे हम गणित का सभी ज्ञान बालकों को दे सकते हैं।

भूगोल की शिक्षा भी रुई के सहारे दी जा सकती है। रुई किस-किस देश में होती है, उसे किस प्रकार की आब-हवा चाहिए, उसकी कितनी क़िस्में हैं, उसका व्यापार किन-किन देशों के बीच में होता है—आदि बातों द्वारा एक होशियार शिक्षक भूगोल का सभी तरह का ज्ञान विद्यार्थियों को दे सकता है।

मैंने सेगाँव में महात्माजी से पूछा—"आप तकली द्वारा इतिहास का ज्ञान किस प्रकार देंगे?"

महात्माजी ने उत्तर दिया—"मैं बालकों को बतलाऊँगा कि पहले हिंदुस्थान के गाँवों में चरखा चलता था, और कपड़ा बुनकर बाहर भेजा जाता था, फिर किस प्रकार लंकाशायर ने हिंदुस्थान का कपड़े का व्यापार नष्ट किया, और किस प्रकार देश में धीरे-धीरे अपना राज्य स्थापित कर लिया। इस राज्य को हटाने के लिये कांग्रेस का किस प्रकार जन्म हुआ, और आज उसकी क्या-क्या प्रवृत्तियाँ हैं। इसी तरह मैं तकली के

सहारे इतिहास को एक जीवित विषय बना दूँगा, जिसे बच्चे आसानी से ग्रहण कर सकेंगे।"

इस प्रकार विभिन्न उद्योगों द्वारा विद्यार्थियों को विविध विषयों का ज्ञान दिया जा सकता है; लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि पूरा ज्ञान किसी एक दस्तकारी के सहारे ही दिया जाय। मुख्य बात यह है कि विद्यार्थियों को उन्हीं वस्तुओं द्वारा शिक्षा दी जाय, जो उनके आस-पास हैं, और जिनका उनसे प्रत्यक्ष संबंध है। मॉन्टिसोरी पद्धति का भी यही सिद्धांत है; किंतु उसका ऑपरेटस (सामान) बहुत क़ीमती होता है, और हमारे देश के बच्चों के वातावरण के अनुकूल भी नहीं है। महात्माजी का यह भी विश्वास है कि अगर उद्योगों द्वारा कुशलता-पूर्वक शिक्षा दी जाय, तो पाठशालाओं का चालू ख़र्च (अध्यापकों का वेतन) भी विद्यार्थियों की बनाई हुई चीज़ों की बिक्री से निकल सकता है। इसलिये हिंदुस्थान-जैसे ग़रीब देश के लिये तो अपने करोड़ों बच्चों को शिक्षा देने का यही व्यावहारिक मार्ग हो सकता है। इस प्रकार की शिक्षा से विद्यार्थियों को पाठशालाओं से निकलने के बाद बेकारी का भी सामना न करना पड़ेगा, और वे अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे। शहरों के धनी कुटुंबों के लिये इस योजना में शायद अधिक आकर्षण न हो; लेकिन हिंदुस्थान के नब्बे फ़ीसदी ग़रीब किसानों और कारीगरों के लिये तो इस योजना की सफलता में कल्याण-ही-कल्याण है।

गांधीजी की योजना में गाँव के प्रत्येक विद्यार्थी को एक दस्तकारी के सिवा कृषि और बाग़बानी का भी साधारण ज्ञान दिया जायगा। यह कोशिश की जायगी कि हरएक पाठशाला के पास कुछ ज़मीन हो, जहाँ बच्चों द्वारा एक छोटा-सा बग़ीचा तैयार करवाया जाय। इस तरह विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकेगा। अँगरेज़ी की जगह हिंदुस्तानी का साधारण ज्ञान दिया जायगा।

बहुत-से लोगों का ख़याल है कि गांधीजी ने मद्य-निषेध की नीति से जो सरकारी आमदनी में घाटा होगा, उसे सँभालने के उद्देश्य से ही अपनी स्वावलंबी शिक्षा-योजना बनाई है। यह बिलकुल ग़लत ख़याल है। यद्यपि यह सच है कि महात्माजी का दस्तकारी द्वारा स्वावलबी शिक्षा का विचार मद्य-निषेध की नीति के सिलसिले में आया, तो भी यह मान लेना कि केवल रुपए के बचाने के लिये यह नवीन शिक्षा-पद्धति रची गई है, अनुचित होगा। ज़रूरत पड़ने पर ही नए आविष्कार संसार के सामने आते हैं, और गांधीजी के लिये भी हिंदुस्थान की ग़रीबी उनकी योजना के लिये एक निमित्त है। निमित्त को ही उद्देश्य मान लेना अन्याय होगा। दरअसल इस योजना के पीछे गांधीजी के आदर्शों की विचार-धारा बहती है। अहिंसा का सिद्धांत तो प्रत्यक्ष ही दिखलाई पड़ता है।

महात्माजी ने वर्धा-शिक्षा-परिषद् में स्वयं कहा था—"अहिंसा से इस योजना की उत्पत्ति हुई है। संपूर्ण मद्य-

निषेध के निश्चय के सिलसिले में मैंने इसे सुझाया है; लेकिन मैं कहता हूँ कि अगर आमदनी में कोई कमी न हो, और हमारा खज़ाना भरा हुआ हो, तो भी अगर हम अपने बालकों को 'शहरी' न बनाना चाहें, तो यह शिक्षा बड़ी उपयोगी होगी। हमें तो उन्हें अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपने देश की सच्ची प्रतिभा का प्रतिनिधि बनाना है, और यह उन्हें स्वावलंबी प्राथमिक शिक्षा देने से ही हो सकता है। ......हमसे कहा जाता है कि शिक्षा पर इँगलैंड लाखों रुपया खर्च करता है, यही हाल अमेरिका का भी है; लेकिन हम भूल जाते हैं कि यह सब धन प्राप्त होता है शोषण से ही। उन्होंने शोषण की कला को विज्ञान का रूप दे दिया है, जिससे उनके लिये अपने बालकों को ऐसी महँगी शिक्षा देना संभव हो गया है; लेकिन हम तो शोषण की बात न तो सोच सकते हैं, और न तो ऐसा करेंगे ही; इसलिये हमारे पास शिक्षा की इस योजना के सिवा, जिसका आधार अहिंसा पर है, और कोई मार्ग ही नहीं है।"

इसलिये गांधीजी की योजना को हम तब तक पूरे तौर से नहीं समझ सकते, जब तक उनके ग्रामीण सभ्यता के आदर्श को अच्छी तरह न जान लें। यह कह देना ठीक होगा कि यंत्र-युग के लिये गांधीजी की योजना अनुकूल न होगी। व्यावहारिक शिक्षा का सिद्धांत तो हरएक दशा में लागू होगा, किंतु दस्तकारी और स्वावलंबन वृत्ति का स्थान मशीन-युग में

न रहेगा, तो भी फ़िलहाल तो हमारे देश के लिये, जहाँ नब्बे फ़ीसदी लोग किसान हैं, यह शिक्षा-पद्धति उपयुक्त होगी।

कुछ लोगों का विचार है कि अगर गांधीजी के योजनानुसार पाठशालाएँ चलाई जायँ, तो उनमें शिक्षकों का यह ध्येय होगा कि बालकों से अधिक-से-अधिक काम करावें, ताकि उनका वेतन निकल सके। इस प्रकार विद्यार्थियों की दशा ग़ुलामों की तरह हो जायगी? यह शंका निर्मूल है, क्योंकि जिन शिक्षकों को इस तरह की पाठशाला में भेजा जायगा, उन्हें इसकी चेतावनी पहले से ही दे दी जायगी, और उन पर बराबर देख-भाल भी रहेगी। 'समय-पत्रक' इस तरह तैयार किया जायगा कि बालक उद्योग से न ऊबें, और उसमें उनकी दिलचस्पी बनी रहे। 'समय-पत्रक' के अनुसार ही शिक्षा दी जायगी, और फिर शिक्षकों को निश्चित समय से अधिक काम कराने का कोई कारण ही न रहेगा। वर्धा-शिक्षा-परिषद् ने, डॉक्टर ज़ाकिरहुसैन की अध्यक्षता में, एक समिति बनाई थी, जिसकी रिपोर्ट हाल ही में प्रकाशित हुई है। इस रिपोर्ट में पाठ्य-क्रम और समय-क्रम की योजना तैयार की गई है। उसी के अनुसार शिक्षक काम करेंगे; 'बालक-ग़ुलामों' के हाँकनेवाले मालिकों की तरह नहीं। अनुभव के अनुसार 'समय-पत्रक' में परिवर्तन भी किया जा सकेगा। इसका प्रबंध सरकार की ओर से रहेगा, जिससे किसी प्रकार की अव्यवस्था न हो।

इस योजना के संबंध में यह भी शंका की गई है कि अगर सारे देश में करोड़ों विद्यार्थी दस्तकारी सीखेंगे, तो पाठशालाओं में से इतनी अधिक चीजें बिक्री के लिये तैयार होंगी कि उनका बेचना कठिन होगा। अगर सरकार पाठशालाओं की वस्तुओं को ख़रीदने लगेगी, तो देश के कारीगरों की रोज़ी उनके बच्चों द्वारा ही छिन जायगी। पाठशालाओं से निकलने के बाद इन विद्यार्थियों का भी यही हाल होगा, और उन्हें भी बेकारी का सामना करना पड़ेगा। लेकिन अगर देश में स्वदेशी भावना की वृद्धि हो, और देश की ग़रीब जनता को लाभ पहुँचाने के हेतु से लोग मिल की चीज़ों के बजाय हाथ की बनी चीज़ों का इस्तेमाल करना शुरू कर दें, तो इस प्रकार की कठिनाई कभी उपस्थित ही न हो सकेगी। इसलिये इस योजना के पीछे गांधीजी का खादी-सिद्धांत तो मानना ही पड़ेगा।

कुछ लोग आपत्ति करते हैं कि इस नवीन योजना के लायक़ अभी शिक्षक नहीं हैं, इसलिये यह योजना सफल न होगी। यह बात तो बच्चों की-सी है। रोम एक दिन में तैयार नहीं हुआ था, और देश के वर्तमान शिक्षकों की फ़ौज रात-भर में नहीं जुटाई गई थी।

नवीन पद्धति के लिये नए प्रकार के शिक्षक तैयार करने पड़ेंगे, और अगर हम श्रद्धा, इच्छा-शक्ति और बुद्धि से नई योजना शुरू करें, तो सफलता अवश्य ही मिलेगी। अगर गांधीजी

की यह योजना सफल हो गई, तो हमारे देश के करोड़ों बच्चे केवल व्यावहारिक शिक्षा ही ग्रहण न कर सकेंगे, बल्कि एक स्वतंत्र, स्वावलंबी और उच्च राष्ट्र के नागरिक भी बन सकेंगे।

क्या हम गांधीजी को समझ सके हैं ?

हर साल गांधीजी की जयंती देश के कोने-कोने में मनाई जाती है। उस दिन लोग कई घंटे सूत कातते हैं, और बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाएँ करके, 'महात्मा गांधी की जय !' बोलकर उनके गुण गाते हैं। उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को मानकर लाखों स्त्री-पुरुष कांग्रेस के सदस्य बन गए हैं, और गांधीजी के विचारों के प्रति बहुत-से लोगों को आदर और श्रद्धा है। महात्माजी के आदेशानुसार आज हिंदुस्थान में हज़ारों कार्यकर्ता अपना सब कुछ छोड़कर देश की विभिन्न प्रकार से सेवा करने में लीन हैं। भारतवर्ष के लाखों गाँवों में उन्हें अवतार की तरह पूजा जाता है, और भूखी तथा नंगी ग्रामीण जनता में उनका नाम लेने से हृदय में श्रद्धा, भक्ति और आशा की बिजली-सी दौड़ जाती है। किंतु यह सब होते हुए भी हमें अब यह साफ़ नज़र आने लगा है कि हमारे देश में लोग गांधीजी को अभी तक नहीं समझ सके हैं। सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को हमने न-जाने कितनी बार ज़ोर-ज़ोर से दुहराया है; तकली और चरखा द्वारा हमने उनके कहने से न-जाने कितने लाख गज़ सूत काता है; किंतु क्या हमने इन चीज़ों पर गंभीरता से विचार करके उन्हें

पूर्ण तौर से समझने की कोशिश की है ? इस प्रश्न का उत्तर 'गांधी-जयंती' के दिन हृदय से हरएक को देना होगा ।

पहले अहिंसा को ही ले लीजिए । आज कांग्रेस के लाखों सदस्य अहिंसा में अपना विश्वास लिखित रूप से जाहिर कर चुके हैं, किंतु हृदय से कितने अहिंसा के असली मतलब को समझ पाए हैं ? अहिंसा के नाम पर हमने न-जाने कितना द्वेष, ईर्ष्या और निरादर समाज में फैलाया है ?

क्या यह सब क्रूर हिंसा नहीं ? अहिंसा के नाम पर न-जाने हमने कितने लोगों को डरपोक और दुर्बल बना दिया है । क्या यह अहिंसा का परिहास नहीं ? आखिर अहिंसा कोई ऊपर का व्यवहार थोड़े ही है, वह तो आंतरिक साधना है । हिंसात्मक लड़ाई के लिये हमें कितनी तैयारी और कितना धन, समय और शक्ति खर्च करना पड़ती है । फिर अहिंसा के लिये तो और भी ज्यादा तैयारी की जरूरत है । हमें अपना सारा दृष्टिकोण बदलना पड़ता है, अपने चरित्र को दूसरी ही तरह से ढालना पड़ता है । प्रत्येक क्षण आत्मचिंतन करने की आवश्यकता महसूस होती है । हिंसक लड़ाई में तो हमारे दिल में डर का कुछ अंश बाक़ी रह जाता है, और इसलिये हमें हथियारों की मदद लेनी पड़ती है, किंतु अहिंसक सैनिक बनने के लिये तो हमें संपूर्ण निर्भयता हासिल करनी होगी । अहिंसा में तो कायरता की जगह हमें हिंसा से भी अधिक वीरता की जरूरत है । हमें अपना जीवन शुद्ध और निर्मल

बनाने की आवश्यकता है। क्या हमने इन सब बातों को गहराई से सोचने का कष्ट किया है? हमारी अहिंसा ज़बान की अहिंसा रही, हृदय की नहीं। हमारे कहने और करने में ज़मीन-आसमान का अंतर रहा। इसीलिये आज हम देखते हैं कि अहिंसा के प्रचार के बजाय हिंसा की ही बाढ़ बढ़ती जा रही है, और देश का भविष्य ख़तरे से घिरता जा रहा है। कांग्रेस में भी फूट पैदा हो गई, और गांधीजी के जीवन का सारा प्रयास मिट्टी में मिला जा रहा है।

हम लगभग बीस साल से खादी का प्रचार कर रहे हैं। लाखों रुपयों की खादी आज देश में तैयार हो रही है। खादी हमारी राष्ट्रीय पोशाक ही बन गई है। किंतु खादी और ग्रामोद्योग का अंदरूनी मतलब कितनों ने समझ पाया है? केवल खादी का कपड़ा पहनने से कुछ ग़रीबों को मज़दूरी अवश्य मिल जाती है, किंतु अगर हम खादी के सांस्कृतिक अर्थ को न समझें, तो हमारे राष्ट्रीय जीवन में कोई परिवर्तन होने की आशा रखना व्यर्थ है। खादी के पीछे एक महत्त्व-पूर्ण फ़िलॉसफ़ी और मनोवृत्ति छिपी है। उसे समझे बिना खादी-वस्त्र पहनना अपने आप और जनता को धोका देना है।

संसार में आर्थिक समस्या हल करने के लिये बहुत-से 'वाद' खड़े हो गए हैं। रूस में साम्यवाद का उद्योग हो रहा है। वह कहाँ तक सफल होगा, यह कहना कठिन है। सफलता की बनिस्बत असफलता के चिह्न ही नज़र आ रहे

हैं। साम्यवाद की प्रतिक्रिया के रूप में आज सारा योरप फ़ैसिज़्म के तूफ़ान में उखड़ा जा रहा है। मशीन और पूँजीपतियों द्वारा दुनिया नचाई जा रही है। एक बार फिर भयंकर महायुद्ध छिड़ गया है। लाखों-करोड़ों लोग शहरों को छोड़-छोड़कर गाँवों की शरण ले रहे हैं। शहरों पर फिर विनाश के गोलों और हवाई जहाजों का नाटक खेला जा रहा है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि अगर यह महायुद्ध कुछ दिनों तक चलता रहा, तो योरप की वर्तमान संस्कृति ही बदल जायगी। लोग शहरों के बजाय गाँवों में ही रहना पसंद करेंगे। बड़ी-बड़ी मशीनों के परिणाम को देखकर लोग दस्तकारी के ज़रिए ही शांति से अपनी ज़िंदगी बिताना उचित समझेंगे। मशीनों द्वारा साम्यवाद स्थापित होना कठिन दिखाई पड़ता है। फिर तो शायद योरप इस सेगाँव के बूढ़े संत की ओर ही झुकेगा, और उसकी बातों को सोचने और समझने की कोशिश करेगा। धीरे-धीरे ग्रामीण सभ्यता ही पश्चिम के देशों में फैलने लगेगी। तब शायद हिंदुस्थान भी गांधीजी की फ़िलॉसफ़ी को पश्चिम से अपनाएगा, और सादगी तथा ग्रामोद्योग हमारे लिये एक फ़ैशन बन जायगा। हमारे देश का यही इतिहास रहा है। किंतु यह विचार ही कितना निराशा और करुणा-जनक है! क्या यह हमारा राष्ट्रीय दिवालियापन साबित नहीं करता ?

आज देश में 'नादिरशाही' की जगह 'लीडरशाही' का बोल-

वाला है, हरएक व्यक्ति अपने को बड़ा नेता समझने लगा है। और, नेता बनने का सबसे अच्छा तरीक़ा बड़े नेताओं को गाली देना है। इसलिये गांधीजी को तो आज न-जाने कितनी गालियाँ खानी पड़ती हैं। हमें बतलाया जाता है कि महात्माजी की बुद्धि बुढ़ापेके कारण नष्ट हो गई है, और उनकी फ़िलॉसफ़ी देश के लिये हानिकारक है। अहिंसा और चरखा हँसी के साधन बनते जा रहे हैं, प्रजातंत्र के नाम पर आतंकवाद फैलता जा रहा है।

लेकिन कौन किसको समझावे, जब सभी लीडर बन बैठे हैं ?

गांधीजी तो अपना जीवन-कार्य कर चुके हैं। उन्होंने ऐसा आदर्श प्रदर्शित किया है, जिसे संसार को कभी-न-कभी अपनाना ही पड़ेगा। किंतु, ईश्वर करे, ऐसा न हो कि हमें महात्माजी के विचार योरप द्वारा समझने पड़ें।

मानव गांधी

दुनिया गांधीजी को 'महात्मा' के ही रूप में पूजती है, उनकी जय बोलती है, और उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करती है। अधिकतर लोग यह समझते हैं कि गांधीजी साधु-संतों की तरह रहते हैं, और उनका संपर्क आस-पास के लोगों से कम रहता है। दूर से उनका जीवन शुष्क और कठोर दिखाई पड़ता है। लेकिन जिन्हें गांधीजी के पास रहने का मौक़ा मिला है, वे जानते हैं कि ऊपरी शुष्कता के नीचे कितनी सरसता और मिठास भरी है। क्योंकि गांधीजी चाहे एक बड़े राजनीतिज्ञ हों या न हों, एक महात्मा हों या न हों, किंतु वह एक आदर्श और व्यवहार-कुशल मनुष्य अवश्य हैं। और, मेरे ख़याल से, उनकी सफलता का मुख्य कारण उनकी सरस मानवता ही है।

गांधीजी देश के लिये एक आदर्श पिता (गुजराती में 'बापू') के रूप में ही देखे जाने चाहिए। उनका हृदय, बिना किसी भी तरह के भेद-भाव के, प्रेम से भरा हुआ है, क्योंकि उनकी अहिंसा का ख़ास पहलू प्रेम और सहानुभूति ही है। मामूली-से-मामूली आदमी के लिये भी, जिसे सारी दुनिया ठुकराकर मूल्य-हीन समझती है, गांधीजी के दिल में प्रेम है।

उनके आश्रम में जो लोग रहते हैं, वे शायद दूसरों के साथ रहने में असमर्थ हों। कई लोग जीती-जागती समस्या ही हैं। उनकी किसी से नहीं बनती। लेकिन गांधीजी की मानवता उन्हें भी निभाने की ताक़त रखती है।

गांधीजी के व्यवहार में प्रेम की मिठास है। उनके पहली बार मिलने पर भी लोगों को मालूम होता है, मानो वह उन्हें बरसों से जानते हैं। उनमें विनोद का अटूट स्रोत है। गंभीर-से-गंभीर बात वह विनोद में ही कह जाते हैं। उनका विनोद हमेशा सहृदय होता है। उसमें कभी बदला लेने की या तिरस्कार की भावना नहीं रहती। उनकी हँसी कभी किसी का दिल नहीं दुखाती। कभी-कभी वह अपने साथियों की ग़लती पर क्रोध भी करते हैं। लेकिन उस क्रोध के पीछे हमेशा प्रेम की शांति छिपी रहती है।

गांधीजी के सब विचार मानवता के पोषण के लिये ही हैं। अहिंसा ही को लीजिए। अगर हिंसा की तूती बोलने लगे, तो हमारा क्या हाल होगा, यह आज योरप में हम अच्छी तरह देख सकते हैं। गैस, आग और जंतुओं के गोले हवाई जहाज़ों द्वारा गिराकर जिस तरह बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों का संहार किया जा रहा है, क्या यह मनुष्यों को शोभा देता है? इतनी कायरता और बेरहमी तो शायद पशु भी न दिखलाएँगे। गांधीजी को तो इस तरह की हिंसा जड़ से हिला देती और बेचैनी से व्याकुल कर देती है।

सत्य के बिना भी मनुष्यों की क्या हालत होती है, यह आज-कल की राजनीतिक संधियों से साफ़ जाहिर होता है। बड़े-बड़े राष्ट्र आपस में एक समझौता करते हैं—और वह सिर्फ़ अपनी सुविधानुसार तोड़ने के लिये। स्वार्थ ही न्याय बन गया है। एक समय वह था, जब लोग "प्राण जायँ, पर वचन न जाहीं" वाले सिद्धांत को मानते थे, और उसके मुताबिक़ अपना व्यवहार भी रखते थे। अब तो वचन का मूल्य ही नहीं रह गया है। क्या यह मानवता है ?

खादी और ग्रामोद्योग को गांधीजी बहुत महत्त्व देते हैं। मशीन-युग के ख़िलाफ़ उनकी आवाज़ हमेशा उठती रहती है, क्योंकि वह जानते हैं कि यंत्रों के कारण मानवता का ह्रास हो रहा है। शोषण, साम्राज्यवाद और युद्ध मशीन की ही करामात है। इसीलिये गांधीजी ग्राम-सहायता चाहते हैं, ताकि हरएक आदमी अपने शरीर से मेहनत करके अपना जीवन-निर्वाह करे, और शोषण का मौक़ा ही न आने पाए। यंत्रों ने मशीन-जीवन की कला और सरसता का भी नाश किया है। इसीलिये गांधीजी यंत्रवाद के ख़िलाफ़ हैं।

राजनीति की कूटनीति के विरुद्ध भी गांधीजी ने अपनी आवाज़ उठाई है, क्योंकि राजनीतिक नेता अक्सर मानवता को दग़ा देकर दानवता का ही व्यवहार करते हैं। जब गांधीजी राजनीति में सत्य और अहिंसा की बातें करते हैं, तो हमारे देश के लोग भी उनका मज़ाक़ उड़ाने से बाज़ नहीं

आते। लेकिन अगर हम यह समझ लें कि गांधीजी महात्मा की तरह नहीं, बल्कि एक सच्चे मनुष्य की हैसियत से ही इन बातों पर जोर देते हैं, तो हमारी बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ दूर हो जायँगी।

हमारे दुर्भाग्य से आज गांधीजी की हँसी उड़ानेवाले बहुत-से लोग हमारे देश में पैदा हो गए हैं। अहंकार और निरादर और उसके साथ-साथ असंयम समाज में फैलता ही जाता है।

आज गांधीजी को जितनी गालियाँ भेंट की जाती हैं, उतनी शायद ही और किसी नेता के लिये दी जाती हों। हाँ, ख्रीष्ट और हज़रत मुहम्मद को भी गाली देनेवाले लोग कम न थे। ख्रीष्ट को तो आख़िर यहूदियों ने मारकर ही छोड़ा। हिंदुस्थान गांधीजी को किस तरह का पुरस्कार देगा? हम नम्रता कब सीखेंगे? इन प्रश्नों का उत्तर हममें से हर-एक को देना है।

चरखा ही क्यों ?

"स्वराज्य के लिये चरखा कातो।" "सूत के धागे में ही स्वराज्य छिपा है।" "सूत-यज्ञ विना सत्याग्रह शुरू नहीं किया जा सकता।" इसी तरह के विचार गांधीजी हमारे सामने हमेशा रखते रहे हैं। पिछले बीस वर्षों से उन्होंने खादी को हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य अंग बनाया है। आज भी जब एक बार फिर सत्याग्रह शुरू करने की बातें चल रही हैं, उनके पास चरखे के सिवा दूसरा शस्त्र नहीं। वह साफ़-साफ़ और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर यही कह रहे हैं कि अगर देश को मेरे नेतृत्व में स्वराज्य हासिल करना है, तो सबको चरखा चलाना चाहिए। हममें से बहुत-से लोग हैरान हो जाते हैं कि बार-बार यह चरखा ही क्यों। इससे कब पिंड छूटेगा। सूत कातकर क्या होनेवाला है। चरखा किस तरह आज़ादी दिला सकेगा। कुछ इसी प्रकार के विचार हमारे मन में उमड़ने लगते हैं। एक ओर तो यह ख़याल आता है कि गांधीजी बहुत अनुभवी हैं। खादी के पीछे कुछ-न-कुछ रहस्य ज़रूर छिपा होगा। दूसरी ओर यह भी विचार आ जाता है कि बापूजी की उम्र भी अब सत्तर के ऊपर है। आख़िर अक़्ल भी कहाँ तक काम करती रहेगी। इस तरह श्रद्धा और

शंका की कशमकश हमारे मन में चलती रहती है। हमारे साम्यवादी भाई तो साफ़-साफ़ कहते हैं कि गांधी का दिमाग़ तो फिर गया है! चरखे से तो हिंदुस्थान का सत्यानास ही होनेवाला है; आज़ादी मिलने की बात तो दूर रही। साम्यवादियों के अलावा बहुत-से दूसरे कांग्रेस के सदस्य भी खादी में विश्वास नहीं रखते। डर से या तो दिल की कमज़ोरी के कारण उनमें इतनी हिम्मत नहीं कि अपने विचार साफ़ ज़ाहिर कर दें। हममें से अधिकांश लोग खादी पहनते हैं, चरखा भी कात लेते हैं, लेकिन सूत के धागे का मर्म अभी तक नहीं जान सके हैं। हम ठंडे दिल से सोच लेते हैं कि आखिर इस बुड्ढे के बिना सत्याग्रह शुरू नहीं हो सकता, इसलिये वह जो कुछ कहता है, करते जाओ। आगे देखा जायगा। हमें तो सिर्फ़ अपने जनरल का हुक्म मानना है। पूरी बात समझने और फिर व्यर्थ की चर्चा और बहस करने से क्या फ़ायदा?

कुछ इसी तरह की वृत्ति हममें से बहुत लोगों की है। लेकिन अब इस तरह से काम न चलेगा। गांधीजी कहते हैं कि जो लोग बिना समझे चरखा चलाते हैं, जो खादी की विचार-धारा के साथ समरस नहीं, उनसे मेरा काम पूरा न होगा। ऐसे लोग मेरी सेना में भर्ती न हो सकेंगे। और, आखिर हम भी अपने आपको कब तक धोका देते रहें? अगर खादी में विश्वास नहीं, अगर उसका महत्त्व ज़ेहन में नहीं आता,

तो फिर ढोंग के लिये चरखा क्यों चलाया जाय ? हमें या तो पूरी बात समझकर गांधीजी के रास्ते पर चलना चाहिए, या चरखों को बंद करके हथियार जमा करना शुरू कर देना चाहिए। दूसरा कोई रास्ता नहीं।

अब हम ठंडे दिमाग़ से सोचें कि आख़िर हिंदुस्थान को स्वराज्य मिले, तो कैसे ? सिर्फ़ 'स्वराज्य' नाम जपने या 'जय' बोलने से आज़ादी न मिलेगी। सिर्फ़ व्याख्यानों या प्रस्तावों से हमारा काम न होगा। हड़ताल और कोरे शोर-ग़ुल से अगर हमें स्वराज्य मिल सकता, तब तो कभी का मिल जाता। लेकिन बात ज़रा गहरी है। हमें ज़्यादा गंभीरता से विचार करना होगा।

क्या हमें हिंसा के ज़रिए आज़ादी हासिल हो सकती है ? इस प्रश्न के उत्तर में तो हमारे साम्यवादी भाई भी 'नहीं' ही कहते हैं। और, बात भी बिलकुल स्पष्ट है। अँगरेज़ लोग इतने बेवक़ूफ़ नहीं कि आसानी से हमारे हाथ में शस्त्र आ जाने देंगे, ताकि हम उन्हीं को नष्ट कर सकें। और, ब्रिटिश साम्राज्य को हिंसा से नष्ट करना कोई हँसी-खेल थोड़े ही है ! बंब और तोप के गोलों के सामने क्या हमारे भाले, तलवार और लाठी काम देंगी ? और बंदूक़ें भी हमारे पास आवेंगी कहाँ से ? जब तक आर्म्स-ऐक्ट (हथियार-क़ानून) जारी है (और वह जारी रहेगा), तब तक हिंसा से स्वराज्य लेने की बात बच्चों की-सी चर्चा ही रहेगी। इसका यह मतलब नहीं कि हम अपना शरीर

मज़बूत न बनाएँ। हमें खूब तंदुरुस्त और निडर बनना ही चाहिए। लेकिन लाठी और तलवार चलाकर या शोर-गुल मचाकर स्वराज्य लेने की बात अब भूल जाना ही होगा।

फिर दूसरा कौन-सा रास्ता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये हमें गहराई से सोचना और समझना चाहिए। एक देश दूसरे देश पर क्यों क़ब्ज़ा करना चाहता है ? केवल गौरव-भावना के लिये ? नहीं। असल बात तो तिजारत और रुपए-पैसे की है। अँगरेज़ लोगों का संबंध हिंदुस्थान से व्यापार के कारण ही हुआ, और ये अपना राज्य आर्थिक लाभ के लिये ही क़ायम रखना चाहते हैं। आज योरप की लड़ाई भी तिजारत और धन की ही स्पर्धा है। इँगलैंड और जर्मनी एक दूसरे का व्यापार नष्ट करना चाहते हैं। इसलिये हमें भी यह पूरे तौर पर और साफ़-साफ़ समझ लेना होगा कि स्वतंत्रता पाने के लिये अहिंसा द्वारा हिंदुस्थान के आर्थिक शोषण की जड़ काट देना है। हमें स्वावलंबी बनने की कोशिश करना है। अपनी ज़रूरत की चीज़ों को देश में ही पैदा करना है। इस तरह अगर हम बाहर का करोड़ों रुपए का माल रोक सकें, तो हिंदुस्थान का बहुत-सा धन भी बचेगा, और वह स्वराज्य की ओर क़दम भी बढ़ा सकेगा। हमारी मुख्य आवश्यकताएँ तो खाना और कपड़ा ही हैं। खाने के लिये तो हमारे देश में कमी नहीं। लेकिन हम विदेशों से करोड़ों रुपए का कपड़ा ज़रूर मँगवाते हैं। यह बात हमें रोकनी होगी।

"लेकिन हिंदुस्थान की मिलों का कपड़ा पहनने में क्या नुक़सान है ? पैसा तो देश ही में रहता है ?" यह सवाल तुरंत पूछा जा सकता है। इसका जवाब भी सीधा ही है— "मिल का कपड़ा ख़रीदने से हमारा पैसा देश में ज़रूर रहता है, लेकिन ग़लत जगह पर जमा हो जाता है। ग़रीब जनता के हाथ में न रहकर वह मिल-मालिकों के ख़ज़ानों में भर जाता है। इस तरह ग़रीबों का शोषण घर में ही होने लगता है। अँगरेज़ों के बजाय हमारे हिंदुस्थानी पूँजीपति ही देश का पैसा बटोरने लगेंगे। इससे देश का फ़ायदा न होगा, क्योंकि हिंदुस्थान तो आख़िर 'दरिद्र नारायण' का ही है।"

हमारे समाजवादी मित्र कहते हैं कि मिलों को हमें बढ़ाना चाहिए। लेकिन पूँजीपतियों को हटाकर साम्यवाद स्थापित करना चाहिए। तब ग़रीबों का शोषण न हो सकेगा। किंतु थोड़ी गंभीरता से सोचने पर यह बात भी फ़िज़ूल-सी है। क्योंकि जब तक अँगरेज़ों का बस चलेगा, तब तक हिंदुस्थान में साम्यवाद किसी भी तरह क़ायम न हो सकेगा। अँगरेज़ तो पूँजीपति ही हैं। साम्यवाद से पहले तो उन्हीं की जड़ कटेगी। वे अपनी जड़ को ख़ुशी से कटवा लेंगे, इतने भोले वे नहीं हैं। जब स्वराज्य हो जाय, हम समाजवाद की बात सोच लेंगे। लेकिन अभी तो प्रश्न यही है कि आज़ादी कैसे मिले ?

सब प्रश्नों को सोचकर हमें आख़िर में गांधीजी के विचारों को मानना होगा। चरखा या खादी द्वारा ही हम देश को स्वावलंबी और ख़ुशहाल बना सकेंगे, ग़रीबों के आँसुओं को पोंछ सकेंगे, और हिंदुस्थान के आर्थिक शोषण को बिना ख़ून बहाए रोक सकेंगे। अगर आज इँगलैंड का कपड़ा हिंदुस्थान में आना बिलकुल बंद हो जाय, तो फिर गांधीजी को दिल्ली जाकर वाइसराय से मिलने की ज़रूरत न रहेगी। बड़े लाट साहब ख़ुद सेगाँव आने का कष्ट उठावेंगे, और कुछ सीधी-सीधी बातें करने के लिये फ़ौरन् तैयार हो जायँगे। इँगलैंड की जेब को जब तक कोई ख़तरा नहीं, तब तक हमें यही बतलाया जायगा कि हिंदू-मुसलमानों में समझौता हुए बिना भला स्वराज्य कैसे दे दिया जाय! हमें बड़े अफ़सोस के साथ बताया जायगा—"भाई, अँगरेज़ लोग तो चाहते हैं कि हिंदुस्थान को जल्द ही पूरी आज़ादी दे दी जाय, किंतु हिंदू-मुस्लिम झगड़े के कारण वे लाचार हैं।" लेकिन जिस दिन हमारे देश में खादी का पूरा प्रचार हो जायगा, घर-घर में चरखे की आवाज़ आने लगेगी, और विदेशी कपड़ा आना बंद हो जायगा, उस दिन हमसे कुछ दूसरी तरह की बातें की जायँगी, वे बातें ऊट-पटाँग न होंगी, क्योंकि उस वक़्त रुपए-पैसे का सवाल होगा।

यही रास्ता है अहिंसक सत्याग्रह का। इसी से हिंदू-मुसलमानों में एकता होगी; इसी से ग़रीबों की सेवा होगी, और

इसी से हमें आज़ादी की रोशनी मिलेगी। "चरखा ही क्यों ?" इसलिये कि उसी में स्वराज्य का रहस्य छिपा हुआ है। अगर हमने इस रहस्य को समझकर उस पर अमल करना शुरू कर दिया, तब तो आगे का रास्ता साफ़ है, नहीं फिर अंधकार-ही-अंधकार दिखलाई देगा। अंधकार में ख़ून की नदियाँ भी बह सकेंगी, और अंत में कुछ भी हाथ न लगेगा। क्या हम गंभीर होकर सोचने का कष्ट करेंगे ?

अहिंसा का मंत्र

"अपने पड़ोसी पर अपनी तरह ही प्रेम करो।" यह ईसा मसीह का उपदेश था। योरप के लगभग सभी राष्ट्र ईसाई-धर्म को माननेवाले हैं; किंतु वे आज अपने कमज़ोर पड़ोसियों को जल्द-से-जल्द निगलकर हज़म कर जाने की कोशिश में ही लगे हैं। योरप अनजाने ही हिंसा की मूर्ति बन गया है, और मनुष्यों का ख़ून बहाने में ही उसे संतोष मिल रहा है। निर्दोष बच्चों और स्त्रियों पर क्रूरता से बलात्कार किया जा रहा है। बम गिराकर साहित्य, कला और संस्कृति को ही नष्ट किया जाता है। और, यह सब बीसवीं शताब्दी की सभ्यता के नाम पर हो रहा है! योरप अपने को सभ्य मानकर पूर्वीय देशों को संस्कृत बनाने की चिंता में लगा है। लेकिन उसे मालूम नहीं कि वह ख़ुद असभ्यता की हद पार कर चुका है, और विनाश की ओर तेज़ी से बहा जा रहा है।

अगर कोई दो व्यक्ति बाज़ार में लड़ने लगें, और एक दूसरे को गाली देकर मारने लगें, तो लोग उन्हें जंगली समझेंगे। लेकिन जब यही काम दो राष्ट्र करते हैं, तो राष्ट्र-धर्म के नाम पर उनकी जय बोली जाती है, और लोगों का क़ुरबानी के

लिये आह्वान किया जाता है। यह है बीसवीं शताब्दी की तहज़ीब! यह है सभ्य लोगों का शिष्टाचार!

जन-साधारण लड़ाई से ऊब गए हैं। हिंसा और रक्तपात से वे घबरा उठे हैं। लेकिन तो भी युद्ध आगे बढ़ता ही जाता है। चारों ओर हाहाकार मचा है। लोगों के जीवन का एक-एक पल भारी हो रहा है। फिर भी योरप के राष्ट्रों की हिंसा-क्रीड़ा के ख़त्म होने के चिह्न नज़र नहीं आ रहे हैं। सच तो यह है कि युद्ध कोई भी नहीं चाहता; लेकिन लड़ाई रुकती ही नहीं। हिंसा की यही तो विचित्र लीला है।

सेगाँव की झोपड़ी में बैठे-बैठे गांधीजी इस लीला को देख-कर स्तंभित हो गए हैं। वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं—"इस हिंसा का अंत करो। अहिंसा का मंत्र सीखो।" लेकिन ख़ून के प्यासे राष्ट्र इस सेगाँव के सत्तर वर्ष के बूढ़े की आवाज़ क्यों सुनने लगे! पागल योरप अपने सिवा सभी को पागल समझता है। जिसका नाश होनेवाला होता है, उसकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

योरप का तो अंत नज़दीक ही दिखाई पड़ता है। लेकिन अफ़सोस तो यह है कि हिंदुस्थान भी गांधी की आवाज़ को ध्यान से नहीं सुन रहा है, और अगर सुन रहा है, तो ठीक समझ नहीं रहा है। हमारे देश में भी हिंसा का नाच फैलता ही जाता है। योरप की ओर ही हमारी निगाह लगी हुई है, और हम भी हिंसा के मंत्र का ही जप करना चाहते हैं।

कांग्रेस ने अहिंसा-पथ को ही स्वीकार किया है। फिर भी उसमें हिंसा फूट निकली है। अहिंसा के नाम पर हम हिंसा के ज्वालामुखी पर बैठे हैं। कौन जाने, वह कब आग उगलने लगे।

कांग्रेस में भी आज ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो अहिंसा के सिद्धांत को अच्छी तरह समझकर उस पर अमल करते है। बहुत-से लोग तो भावना के वश होकर ही गांधीजी के कहे अनुसार करते हैं। लेकिन गांधीजी के आदर्शों को तर्क से समझकर उनका प्रचार करनेवाले लोग इने-गिने ही है!

अहिंसा में प्रेम की भावना तो अवश्य है; लेकिन वह तर्क की दृष्टि से भी हमारे गले उतर सकती है। हम किसी व्यक्ति को बहादुर क्यों कहते हैं? क्योंकि वह अपनी जान खतरे में डालता है। जो योद्धा शस्त्रों से लड़ता है, वह बहादुर अवश्य है। लेकिन शस्त्रों के कारण हम उसे पूरे तौर से निर्भय नहीं कह सकते। उसे हथियारों की शरण लेनी पड़ती है। वह अपने बल पर ही शत्रु को पराजित करने की हिम्मत नहीं रखता। इसलिये पूर्ण निर्भय बनने के लिये हमें शस्त्रों को भी त्याग देना होगा। तभी हम सच्चे बहादुर कहला सकते हैं। हथियारों के बिना हम आत्मबल और प्रेम से ही लड़ें, तो वीरता का ऊँचा आदर्श प्राप्त हो सकता है। दूसरे शब्दों में हिंसा का तर्क-युक्त विकास अहिंसा ही है। क्योंकि अहिंसा का अर्थ पूर्ण निर्भयता है।

अक्सर लोग कहते हैं कि गांधीजी ने अहिंसा का मंत्र जपकर हिंदुस्थानियों को डरपोक और कमज़ोर बनाया है। लेकिन अगर हम ऊपर दिए गए विचारों को ज़रा भी खुले दिमाग़ से समझने की कोशिश करें, तो हमें मालूम होगा कि गांधीजी पर देश को कमज़ोर बनाने का आरोप लगाना बिलकुल अनुचित और निर्मूल है। अहिंसा और चाहे कुछ भी हो, किंतु वह डरपोकपन और निर्बलता नहीं। असल में तो वह वीरता, हिम्मत और बल की परा काष्ठा है। अगर एक कमज़ोर व्यक्ति डर के मारे अपना सिर फुड़वा ले, और अहिंसा के नाम पर अपनी शर्म छिपाने की कोशिश करे, तो वह नामर्द ही कहा जा सकता है। अहिंसा तो वह व्यक्ति ही दिखला सकता है, जो बलवान् होते हुए भी निर्भयता और प्रेम से कष्ट सहन कर सके।

भगवान् बुद्ध ने कहा था—"हिंसा अहिंसा से ही रुक सकती है।" यही बात आज बापू भी कह रहे हैं। पिछला महायुद्ध युद्धों का अंत करने के लिये लड़ा गया था। लोग समझते थे कि जर्मनी का ख़ात्मा करने के बाद आगे लड़ाई लड़ने की फिर नौबत न आएगी। लेकिन लगभग बीस वर्ष बाद ही और भी भयंकर युद्ध का तूफ़ान दुनिया को तबाह कर डाल रहा है। यह कहना अनुचित न होगा कि हिटलर पिछली लड़ाई का फल है। इसलिये अगर दुनिया समझे कि वर्तमान युद्ध के बाद शांति स्थापित हो सकेगी, तो यह

बिलकुल नासमझी होगी। इस लड़ाई के बाद शायद सवाई हिटलर पैदा होकर संसार का अंत ही कर देगा।

कुछ इसी तरह के विचारों को लेकर थोड़े समय से योरप में शांतिवाद (Pacifism) चल पड़ा है। लेकिन शांतिवाद और गांधीजी के अहिंसावाद में बहुत अंतर है। योरप का शांतिवाद अहिंसा के आदर्श की पहली सीढ़ी कहा जा सकता है। वह हिंसा के मार्ग का खंडन करता और युद्धों को बंद करने का आंदोलन करता है। किंतु उसमें हिंसा रोकने और प्रेम द्वारा विजय प्राप्त करने की क्रिया का दर्शन नहीं मिलता। गांधीजी का अहिंसावाद एक संपूर्ण फ़िलॉसफ़ी है, जिसमें साध्य और साधन दोनो ही का समावेश है। अहिंसा नकारात्मक नहीं। वह एक प्रचंड शक्ति है, जिसके सामने हिंसा भी काँपने लगेगी। यह शक्ति निरंतर साधना और तपस्या द्वारा ही उत्पन्न हो सकती है। हिंसात्मक युद्ध के लिये भी हमें कितनी तैयारी और अभ्यास करना पड़ता है। फिर अहिंसात्मक विजय प्राप्त करने के लिये तो और भी अधिक साधना की जरूरत है। अहिंसा निःशस्त्र प्रतिकार नहीं, बल्कि प्रेममय विजय है। इस प्रेम-बल को हासिल करने के लिये आत्मशुद्धि और तपस्या चाहिए। इसीलिये अहिंसा-मंत्र को सफल बनाने के लिये गांधीजी ने चरखा-यंत्र का शोध किया है। उनका विश्वास है कि चरखे द्वारा हम अहिंसा-बल प्राप्त कर सकते

हैं, क्योंकि खादी की मूल भावना है—प्रेम, सहानुभूति और शोषण का प्रतिकार।

अगर हिंदुस्थान अहिंसा के मार्ग को ग्रहण कर ले, तो सारे संसार को अंधकार में रोशनी दिखाकर अमूल्य सेवा कर सकता है। लेकिन क्या हम अहिंसा की साधना के लिये तैयार हैं? अगर हम सचेत होकर अहिंसा-शक्ति हासिल कर सकेंगे, तो हमारा और संसार का कल्याण होगा। नहीं तो फिर योरप की तरह इस पुण्य भूमि में भी खून की नदियाँ ही बहेंगी।

राष्ट्र-केंद्र वर्धा

महात्मा गांधी के सेगाँव में बस जाने के कारण आज वर्धा राष्ट्र का केंद्र और तीर्थ-स्थान-सा बन गया है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता यहाँ बराबर आते रहते हैं। भारतवर्ष के सिवा अन्य देशों के यात्रियों की संख्या भी कुछ कम नहीं रहती। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की बैठकें ज्यादातर यहीं होने के कारण वर्धा की ओर सारे देश और संसार की निगाह बनी रहती है। महात्माजी और सेठ जमनालालजी की वजह से वर्धा-जैसे एक छोटे-से शहर में इतनी प्रांतीय और अखिल भारतीय संस्थाएँ हैं कि उनका संक्षेप में विवरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

वर्धा की विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों का जिक्र करने के पहले यहाँ के अनूठे और पुनीत वातावरण के विषय में लिखना अनुचित न होगा। महात्माजी के शब्दों में सेठ जमनालालजी 'मनुष्यों के चतुर मछुए' हैं। राष्ट्रीय वृत्ति के सुयोग्य और कार्य-कुशल व्यक्तियों को चुन-चुनकर वर्धा की ओर आकर्षित करके उन्होंने एक ऐसी कोलोनी बसा दी है, जिसकी सभ्यता, विचार-धारा और भावनाएँ साधारण लोक-जीवन से बिलकुल भिन्न हैं। बाहर से आए बहुत-से लोगों

के मन में विचार आता है कि यहाँ के व्यक्ति कुछ 'पागल'-से हैं। और, यथार्थ में इस विचार में सत्य का काफ़ी अंश है। क्योंकि यहाँ के लोगों की विचार-धारा अन्य लोगों से बहुत भिन्न है। वर्धा में अधिकतर ऐसे हो व्यक्ति विभिन्न संस्थाओं में कार्य कर रहे हैं, जो लोक-जीवन की सामान्य सभ्यता के बाग़ी होकर, अत्यंत सादी ज़िंदगी बसर करके देश के काम में लगे हुए हैं। कई कार्यकर्ता तो सरकारी नौकरियाँ छोड़-छोड़कर वर्धा में आकर बस गए हैं। अन्य व्यक्ति भी अपने-अपने आदर्श के अनुसार कार्य में लीन होकर काम कर रहे हैं। सबका जीवन बहुत सरल है। न उन्हें अधिक धन की आवश्यकता है, न यहाँ के लोग धन के लिये किसी की वक़त करने के लिये तैयार हैं। 'महाजनी' सभ्यता के स्थान पर उनके संसार में योग्यता, लगन और सेवा का ही आदर तथा सम्मान है। अगर ये लोग 'पागल' हैं, तो महात्माजी इन पागलों के शाहंशाह हैं।

स्टेशन के समीप ही मगनबाड़ी है, जहाँ अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ का प्रधान कार्यालय है। मगनबाड़ी पहले सेठ जमनालालजी का बग़ीचा था। कुछ वर्ष पहले श्रीमगनलाल गांधी की स्मृति में उन्होंने इमारतों के साथ अपना बग़ीचा अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ को मुफ़्त दे दिया। इस संघ का उद्देश भारतवर्ष के ग्रामों की शारीरिक, आर्थिक और मानसिक उन्नति करना है। आर्थिक वृद्धि के लिये ग्रामोद्योगों

का पुनरुत्थान करने की कोशिश की जा रही है। मगनबाड़ी में विभिन्न उद्योगों को, जैसे कपास का धुनना, कातना, बुनना, हाथ से कागज़ बनाना, हाथ का कुटा चावल तैयार करना, मधु-मक्खियाँ पालना, घानी से तेल निकालना इत्यादि सिखलाने की व्यवस्था है। मगनबाड़ी के पास ही, सड़क की दूसरी ओर, संघ की तरफ़ से एक विद्यालय है, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रांतों के नवयुवकों को ग्राम-सेवा की शिक्षा दी जाती है। यह संघ महात्माजी की प्रेरणा से क़ायम किया गया है, और महात्माजी के ही शब्दों में रचनात्मक राजनीति का ठोस काम कर रहा है। इस संघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्रीकृष्ण-दासजी जाजू हैं, और मंत्री श्रीजे० सी० कुमारप्पा। श्रीजाजूजी महात्माजी के पक्के अनुयायी हैं, और अत्यंत सरल जीवन व्यतीत करते हुए बड़ी बुद्धिमत्ता और कार्य-कुशलता से देश की सेवा कर रहे हैं। श्रीजे० सी० कुमारप्पा भी बहुत विद्वान् और सेवा-परायण पुरुष हैं। वह पहले सरकारी नौकर थे। अब थोड़े-से ही ख़र्च में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अगर सरकारी नौकरी न छोड़ी होती, तो आज वह आडीटर-जनरल होते। लेकिन उन्हें तो देश-सेवा की लगन थी, और यहाँ उन्हें उचित कार्य-क्षेत्र मिल गया है। कुछ समय पहले मगनबाड़ी में फिरार-नामक एक जर्मन नवयुवक भी बड़े उत्साह से कार्य करता था। हिटलर के फ़ैसिस्टवाद से तंग आकर वह दो वर्ष स्पेन में रहा, और वहाँ गृह-युद्ध शुरू होने

पर भारतवर्ष आ गया। महात्माजी की अहिंसा-भावना ने ही उसे आकर्षित किया है। अब वह अपना योरप का लिबास छोड़कर एक भारतीय देहाती की तरह रहता है। कुछ दिन पहले डॉक्टर वासटो-नामक एक इटालियन प्रोफ़ेसर भी मगनबाड़ी में ग्रामोद्धार की शिक्षा लेने आए थे, उनका सादा वेश देखकर बड़ा आश्चर्य होता था।

वर्धा का दूसरा मशहूर स्थान शहर से क़रीब डेढ़ मील की दूरी पर नालबाड़ी है। यह एक गाँव है, जिसमें अधिकतर हरिजनों की बस्ती है। यहाँ तपस्वी श्रीविनोबाजी का आश्रम है, जहाँ ग्राम-सेवक तैयार किए जाते हैं। यहाँ की विशेषता एक चर्मालय है, जहाँ मरे हुए जानवरों की खाल से चमड़े की तरह-तरह की चीजें तैयार की जाती हैं। यह चर्मालय भी महात्माजी की प्रेरणा से खोला गया है। महात्माजी चाहते हैं कि इस तरह के चर्मालय भारतवर्ष के गाँवों में खोले जायँ, ताकि देहाती लोग मरे हुए जानवरों की संपत्ति का भी पूरा उपयोग कर सकें, और अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकें। नालबाड़ी में वर्धा के ग्राम-सेवा-मंडल का कार्यालय भी है, जिसके द्वारा कई गाँवों में अच्छा कार्य हो रहा है। इस मंडल के मुख्य कार्यकर्ता श्रीजमनालालजी बजाज के भतीजे श्रीराधाकृष्णजी बजाज हैं।

वर्धा में भारतीय साहित्य-परिषद् का भी कार्यालय है। इस परिषद् के द्वारा भारतवर्ष के प्रांतीय साहित्यों का संगठन

करके देश को एक संस्कृति के सूत्र में बाँधने की कोशिश की जा रही है। यह देश का दुर्भाग्य है कि हमारे शिक्षित लोग इँगलैंड और योरप के साहित्य के बारे में हिंदुस्थान के विभिन्न प्रांतों के साहित्यों की अपेक्षा अधिक जानते हैं। इस परिषद् द्वारा प्रांतीय साहित्यों की उत्तम कृतियाँ राष्ट्र-भाषा हिंदी में अनुवाद की जाती हैं, ताकि हमारे साहित्य-सेवियों में परस्पर संबंध बढ़े। पहले परिषद् का कार्य 'हंस' द्वारा चलाया जाता था। अब कुछ छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में अच्छा साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है। इस परिषद् के प्रमुख स्वयं महात्माजी हैं, और आचार्य काका कालेलकर इसके मंत्री हैं।

वर्धा में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति का भी प्रधान कार्यालय है। इस समिति के अध्यक्ष देशरत्न श्रीबाबू राजेंद्रप्रसाद और उपाध्यक्ष श्रीआचार्य काका कालेलकर हैं। मंत्री के कार्य का भार इन पंक्तियों के लेखक पर ही है। यह समिति दक्षिण के चार अहिंदी प्रांतों को छोड़कर शेष सात अहिंदी प्रांतों—बंबई, गुजरात, महाराष्ट्र, सिंध, बंगाल, उत्कल और आसाम—में राष्ट्र-भाषा-प्रचार का काम सन् १९३६ से कर रही है। इस समिति द्वारा कुछ राष्ट्र-भाषा-परीक्षाएँ भी काफ़ी बड़े परिमाण में चलाई जाती हैं। विभिन्न प्रांतों के नवयुवकों को प्रचार-कार्य की शिक्षा देने के लिये वर्धा ही में राष्ट्र - भाषा - अध्यापन - मंदिर भी संचालित किया जा

रहा है। हिंदी-शीघ्र लिपि और टाइपराइटर को वैज्ञानिक और उपयोगी बनाने का महत्त्व-पूर्ण कार्य भी समिति ने अपने हाथ में लिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में वर्धा की दो संस्थाएँ जानने योग्य हैं—एक तो महिलाश्रम और दूसरी नव-भारत-विद्यालय। महिला-आश्रम आरंभ में विधवाओं के लिये खोला गया था, जिसमें वे राष्ट्रीय कार्य करने को तैयार की जाती थीं। अब वहाँ सधवाओं, विधवाओं, कन्याओं—सभी के शिक्षण की व्यवस्था है। क़रीब-क़रीब हरएक प्रांत की विद्यार्थिनियाँ यहाँ रहती और सरल जीवन व्यतीत करती हैं। संस्था का वातावरण प्राचीन आश्रमों से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यहाँ सब बहनें अपने हाथ से सारा काम करती हैं। नौकरों का उपयोग नहीं किया जाता। आश्रम का अध्ययन-क्रम बिलकुल स्वतंत्र है, किसी सरकार या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य नहीं। पढ़ाई का माध्यम हिंदी है। शारीरिक श्रम पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

नव-भारत-विद्यालय (पूर्व का मारवाड़ी-विद्यालय) वर्धा में क़रीब २८ वर्ष से चल रहा है। देश की संस्कृति और आवश्यकतानुसार विद्यालय में उपयुक्त शिक्षा-पद्धति के निर्माण का प्रयत्न किया जा रहा है। बेकारी की समस्या हल करने और शरीर तथा बुद्धि का स्वाभाविक विकास करने की दृष्टि से औद्योगिक शिक्षा प्रारंभ की गई है। विद्यार्थियों में

स्वावलंबन की वृत्ति उत्पन्न की जा रही है, और व्यावहारिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। पूर्व के अनुभव के कारण विद्यालय का संबंध सरकार से तोड़ा नहीं गया है। यह विद्यालय सरकार की ओर से मान्य होते हुए भी राष्ट्रीय शिक्षण की ओर कई प्रयोग कर रहा है। आशा है, इसके द्वारा भविष्य में कुछ ठोस और रचनात्मक कार्य हो सकेगा। वर्धा-शिक्षण-योजना का जन्म इसी विद्यालय में की गई राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् द्वारा हुआ था। इस विद्यालय के आचार्य की जिम्मेदारी भी इस प्रस्तुत लेखक पर ही है।

गांधी-सेवा-संघ का नाम अभी तक शायद अधिक लोगों ने न सुना होगा। इस संस्था का उद्देश महात्मा गांधी के विचारों का प्रचार करना और उनके अनुसार राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य करना है। संघ के सभी सभासद् चुपचाप बड़े महत्त्व का काम कर रहे हैं। राष्ट्र के क़रीब-क़रीब सभी कांग्रेस-नेता इस संघ के सदस्य हैं। संघ के अध्यक्ष श्री-किशोरलालजी मश्रुवाला हैं, और उनका प्रधान कार्यालय वर्धा में ही है।

भौगोलिक दृष्टि से तो वर्धा भारतवर्ष के केंद्र में है ही। अब वह विभिन्न महत्त्व-पूर्ण राष्ट्र-प्रवृत्तियों का भी केंद्र हो गया है। ऐसी दशा में वर्धा को 'राष्ट्र-केंद्र' कहना उचित ही है।

सेगाँव का संत
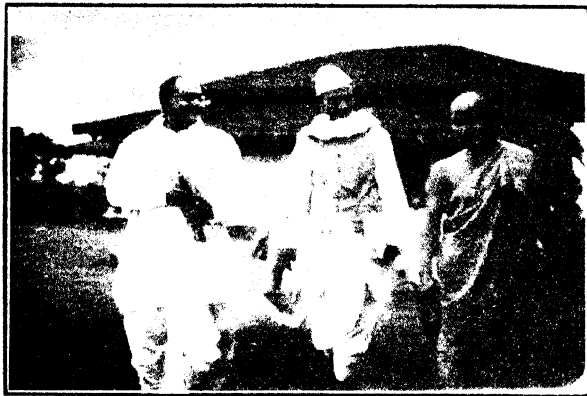
सेगाँव-आश्रम में

[श्रीसुभासचंद्र बोस और बाबू राजेंद्रप्रसाद चीनी साधु से बातें कर रहे हैं ।]

श्रीविनोबा भावे

तपस्वी विनोबा

श्रीविनोबा भावे वर्धा के उन व्यक्तियों में हैं, जिन्होंने नाम की बिलकुल परवा नहीं की और अपना सारा जीवन देश की सेवा में ही बिताया है। यही कारण है कि देश की अधिकांश जनता उनके नाम और कार्य से अनभिज्ञ है। वर्धा आने के पहले मैंने भी उनका नाम न सुना था, क्योंकि विनोबाजी अख-बारों में नाम छपवाने से सदा घृणा करते रहे हैं। परंतु उनका व्यक्तित्व सचमुच हमारे जानने योग्य है। वह गांधी-युग की महान् विभूतियों में से एक हैं, और गांधीजी के कई कार्यों के पीछे उनकी शक्ति प्रकट रूप से लगी रहती है। उनके जीवन को देखकर हमें अनायास ही भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की याद आ जाती है। उनका जीवन बहुत ही सरल और गंभीर है। वह लोगों से अधिक मिलना-जुलना पसंद नहीं करते। पहली बार की भेंट में वह बहुत रूखे स्वभाव के जान पड़ते हैं। किंतु अगर हम उनकी जीवन-कहानी जानें, तो हमें मालूम होगा कि उनकी ऊपरी शुष्कता के पीछे कितनी भावना और तपस्या छिपी हुई है।

विनोबाजी का जन्म बंबई के कोलाबा-जिले में गागोदें-नामक गाँव में हुआ था। किंतु उनके पिता प्रोफ़ेसर गजर

द्वारा संचालित 'कला-भवन' में उद्योग सीखने के लिये बड़ौदा चले गए थे। इसलिये उनकी प्रारंभिक शिक्षा बड़ौदा में ही हुई। विनोबाजी ने कई वर्ष तो घर पर ही अपने पिताजी से शिक्षा ग्रहण की। बाद को वह एक विद्यालय में भर्ती हुए। उनके पिताजी चाहते थे कि वह किसी उद्योग में प्रवीण बन जायँ। इसलिये विनोबाजी को चित्र-कला का विशेष अभ्यास कराया गया।

किंतु उनका मन तो दूसरी ओर ही खिंचता जा रहा था। वंग-भंग-आंदोलन के बाद महाराष्ट्र के युवकों में भी काफ़ी उत्तेजना और हलचल फैल गई थी। सब युवक सोचते थे कि जिस तरह समर्थ रामदासजी ने ब्रह्मचारी रहकर शिवाजी के द्वारा देश की सेवा की थी, उसी तरह वे भी अपना जीवन देश को उन्नत बनाने में क्यों न लगा दें। विनोबाजी के मन पर भी वंग-भंग-आंदोलन का काफ़ी असर हुआ, और उन्होंने बाल-ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले लिया। उस व्रत को उन्होंने आज तक निभाया है।

विनोबाजी प्रारंभ में राजनीति की ओर भी झुके। लोकमान्य तिलक के विचारों से वह काफ़ी प्रभावित हुए। उनके दिल में क्रांतिकारी भावनाएँ भी उठती थीं, और उनका स्वभाव भी उग्र था। विद्यार्थी-जीवन में उन्हें गणित से विशेष रुचि थी, और अभ्यास में वह अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहते थे। उनके पिता को आशा थी कि वह

उच्च शिक्षा प्राप्त कर और किसी कला में पारंगत बनकर नाम कमाएँगे। किंतु दिन-दिन विनोबाजी में धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाएँ ज़ोर पकड़ती गईं, और उनके मन में साधारण शिक्षा और सांसारिक बातों के प्रति अरुचि पैदा होती गई। विद्यालय की पढ़ाई में बिलकुल कम ध्यान देने लगे, और मराठी-साहित्य तथा धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन में लग गए। प्रारंभ में तो उन्होंने संस्कृत का अभ्यास नहीं किया था, और उसके स्थान में फ्रेंच-भाषा सीखी, किंतु मराठी-साहित्य से अच्छा परिचय होने के कारण उन्हें संस्कृत सीखने में कठिनाई न हुई। जब उन्होंने सुना कि लोकमान्य तिलक गीता-रहस्य प्रकाशित करनेवाले हैं, तब उसके स्वागत की तैयारी के लिये विनोबाजी गीता के अध्ययन में लग गए, और उसके द्वारा संस्कृत के भी पंडित बन गए।

गीता के अध्ययन के बाद विनोबाजी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति और भी बढ़ गई। किंतु उनके मन में शांति न थी। उन्होंने देखा कि घर में रहकर वह पर्याप्त अध्ययन और मनन न कर सकेंगे। इसलिये उन्होंने घर छोड़कर कहीं बाहर जाने का इरादा कर लिया। उनके पिता उनकी प्रवृत्ति से असंतुष्ट थे। इसलिये जब विनोबाजी इंटरमीजिएट की परीक्षा के लिये बड़ौदा से बंबई गए, तब परीक्षा में बैठने के बजाय काशी भाग गए। वहाँ उन्होंने कुछ महीने संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का अभ्यास किया। उन्हें काफ़ी कष्ट भी सहने पड़े।

किंतु तब भी उन्हें आंतरिक शांति नहीं मिली। वह संन्यासी बनकर हिमालय नहीं जाना चाहते थे। उनके मन में देश के लिये कुछ ठोस कार्य करने की भी प्रबल इच्छा थी। इतने में उन्होंने महात्मा गांधी के साबरमती-आश्रम के बारे में सुना। उन्होंने देखा कि हिंदुस्थान के नेताओं में उनके विचार गांधीजी से ही बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसलिये उन्होंने गांधीजी से पत्र द्वारा आश्रम में भर्ती होने की आज्ञा माँगी, और उत्तर आने की प्रतीक्षा किए विना ही साबरमती जा पहुँचे। उन्हें आश्रय तो मिल गया, किंतु शुरू में किसी का उनकी ओर विशेष ध्यान न गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य भी बहुत खराब हो गया था, और शरीर काफ़ी दुर्बल था। आश्रम का जीवन तो बहुत कठोर था; शारीरिक श्रम आवश्यक था। विनोबाजी को पानी खींचने का काम मिला, जो उन्होंने बड़ी तत्परता और लगन से किया। गांधीजी को भी काफ़ी आश्चर्य हुआ। उन्होंने एक दिन विनोबाजी से पूछा—"तुम्हारा शरीर तो बहुत अस्वस्थ है, फिर भी तुम इतना श्रम किस प्रकार कर लेते हो?" उत्तर मिला—"आत्मा तो बलवान् हो सकती है।" उसी दिन से गांधीजी का ध्यान विनोबाजी की ओर जाने लगा, और धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों उनसे संपर्क बढ़ता गया, गांधीजी उनकी अधिक क़द्र करने लगे। बाद में तो विनोबाजी साबरमती-आश्रम के मुख्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे।

नागपुर-कांग्रेस के बाद श्रीजमनालालजी बजाज की इच्छा हुई कि वर्धा में भी एक सत्याग्रह-आश्रम स्थापित किया जाय। गांधीजी ने इस आश्रम का संचालन करने के लिये विनोबाजी को चुना, और इस प्रकार विनोबाजी सन् १९२१ से वर्धा में ही रहते हैं। सन् १९२३ में यह आश्रम बंद हो गया, और तब से विनोबाजी वर्धा शहर से डेढ़ मील की दूरी पर, नालवाड़ी-नामक गाँव में, बस गए हैं। वहाँ उन्होंने खादी का एक केंद्र खोला है, और आस-पास के गाँवों के कुछ लोग वहाँ सूत कातकर और कपड़े बुनकर अपनी जीविका चलाते हैं। विनोबाजी ने नालवाड़ी में चरखा और तकली को अधिक उपयोगी बनाने के लिये बहुत-से प्रयोग किए हैं। फलतः खादी-शास्त्र के विकास का श्रेय उन्हीं को देना उचित होगा।

विनोबाजी में आध्यात्मिकता पूरे तौर से भरी हुई है। उनका जीवन बिलकुल संतों-जैसा है। गीता के तत्त्वों को न केवल उन्होंने खुद समझकर दूसरों की कठिनाइयों को सुलझाया है, प्रत्युत उन तत्त्वों पर सफलता-पूर्वक अमल भी किया है। गांधीजी के सिद्धांतों को भी अपने सुलझे दिमाग़ से विनोबाजी ने जितना समझा है, उतना बहुत ही कम लोगों ने समझा होगा। उनके विचार मौलिक और मार्मिक हैं। उनकी वृत्ति गणितज्ञ-जैसी है। उनका प्रत्येक विचार सुव्यवस्थित और स्पष्ट है। उनके दिमाग़ में व्यावहारिकता

भी कूट-कूटकर भरी है। इसलिये खादी के संबंध में उनका ठोस कार्य सफल हो सका है। वर्धा-शिक्षण-योजना के पीछे भी विनोबाजी का व्यावहारिक और सक्रिय ज्ञान छिपा हुआ है। उद्योग द्वारा शिक्षा देने का प्रयोग विनोबाजी के लिये बिलकुल नया नहीं था। वह तो इसी पद्धति को स्वाभाविक रूप से काम में ला रहे थे। खादी-शास्त्र में वह इतने लीन हो गए हैं कि उसी से वह सभी प्रकार की विद्या का स्रोत निकाल सकते हैं। उनकी प्रखर बुद्धि के ही कारण आज वर्धा-शिक्षण-योजना इतने विस्तार से देश के सामने रक्खी जा सकी है।

विनोबाजी एक आदर्श शिक्षक हैं। उनकी लेखन-शैली भी आकर्षक है। 'मधुकर' नाम से उनके मराठी-लेखों का संग्रह एक वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। उनके लेख किसी भी भाषा के साहित्य को गौरव दे सकते हैं।

विनोबाजी का रहन-सहन बहुत ही सादा है। नालवाड़ी में बाँस की एक मामूली झोपड़ी में रहते हैं। कुछ महीनों से वह अपना स्वास्थ्य सुधारने की दृष्टि से पवनार में रह रहे हैं। यह स्थान वर्धा से लगभग छ मील दूर है।

विनोबाजी शहरों से तो हमेशा दूर ही रहने की कोशिश करते हैं। उन्हें गाँवों की ग़रीब जनता की ही मूक सेवा करने में आनंद आता है। वह अक्सर आस-पास के गाँवों में पैदल ही जाते हैं, और लोगों में खादी और गीता का प्रचार

करते हैं। ख्याति की उन्होंने कभी इच्छा नहीं की, इसलिये उनका नाम अधिक प्रसिद्ध नहीं। किंतु उनका जीवन इतना उज्ज्वल है कि गांधीजी भी कई बातों में उन्हें अपना आदर्श मानते हैं।

देश-भक्त सेठ जमनालाल

सेठ जमनालालजी से मिलने का पहला अवसर मुझे लखनऊ-कांग्रेस में मिला था। एक मित्र से सेठजी के बारे में थोड़ा-बहुत मुझे मालूम तो हो गया था, लेकिन इसके पहले उनसे मिलने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ था। इँगलैंड से लौटे कुछ ही महीने बीते थे। मैंने सोचा, कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ घूम आना अच्छा रहेगा। 'मोतीनगर' भी देख लूँगा, कुछ तफ़रीह हो जायगी, और सेठजी से भी मिलने का मौक़ा मिल जायगा।

१३ एप्रिल को मैं अपने भाई के साथ मोतीनगर पहुँचा। सुबह जल्दी ही जाने की कोशिश की, लेकिन चलते-चलते धूप निकल आई, और काफ़ी गर्मी हो गई। मोतीनगर में धूल भी काफ़ी फाँकनी पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि सेठजी विषय-निर्वाचन-समिति में व्यस्त हैं।

"क्या मैं अपना कार्ड भेज सकता हूँ?" मैंने स्वयंसेवक से पूछा।

"अभी अंदर जाने की इजाज़त नहीं है। आप अपना कार्ड मुझे दे दीजिए। उचित समय पर मैं उन्हें दे दूँगा।"

"बहुत अच्छा, जनाब!" मैंने लंबी साँस लेकर कहा।

मैं और भाई साहब पास के दूसरे पंडाल के समीप, जहाँ कुछ छाँह थी, चुपचाप बैठ गए। कभी सिर पर तौलिया डाले कृपलानीजी बाहर आते, कभी डॉक्टर ख़ाँ साहब। लेकिन सेठजी का कुछ पता न चला। एक-दो बार अपने कार्ड के बारे में फिर तहक़ीक़ात की, लेकिन स्वयंसेवकों ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। मैं बैठा-बैठा ऊब चला। सोचा, फिर कभी आने की कोशिश करूँगा। लेकिन कार्ड भिजवाकर चला जाना शिष्टाचार के ख़िलाफ़ था। इसी विचार से कुछ देर और बैठा रहा।

"अरे! सेठजी तो बाहर आ गए।" मेरे भाई ने कहा।

"अच्छा, यही सेठजी हैं?" मैंने जल्दी से उठकर पूछा।

मुझे अख़बारों में देखे हुए उनके फ़ोटो का भी स्मरण हुआ। हम दोनो जल्दी से उनके पास पहुँचे। मेरे भाई ने, जो पहले उनसे एक बार मिल चुके थे, नमस्कार किया। मेरा परिचय कराया। मैंने भी नमस्कार किया।

"आप योरप से कब आए?" उन्होंने मुझसे पूछा।

"कई महीने हो गए।" मैंने धीरे से कहा।

"अच्छा, मुझे तो कोई ख़बर ही नहीं मिली।"

कुछ देर तक उनसे बातें हुईं। लेकिन वह कमेटी से बीच में ही उठ आए थे; अधिक समय तक बाहर नहीं ठहर सकते थे। उन्होंने अपने ठहरने के स्थान का पता बतलाया, और एक बार फिर मिलने को कहा। मैं उनकी आज्ञा कैसे न मानता।

कुछ ही महीनों बाद मुझे उनके संपर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके संपर्क में देश-सेवा का बल है, स्वार्थ का नहीं। वह नवयुवकों को देश या समाज की सेवा करने के काम में लगाने के फ़िराक़ में रहते हैं। मैं कितनी सेवा कर सकूँगा, यह तो ईश्वर ही जानता है, लेकिन हाँ, उनके 'संपर्क' में आ गया हूँ। मेरा कार्य-क्षेत्र तो शिक्षा और साहित्य ही है। अस्तु।

वर्धा में रहने के कारण मुझे उनके दैनिक जीवन को नज़दीक से देखने का अवसर मिला। यहाँ मुझे उनकी जीवनी नहीं लिखनी है, केवल उनके दैनिक जीवन की उन्हीं बातों का ज़िक्र करना है, जिनका मुझ पर प्रभाव पड़ा है।

उनकी जीवनी के बारे में इतना कहना काफ़ी होगा कि उनका जन्म सन् १८८६ में, सीकर के पास 'काशी का वास'-नामक एक छोटे-से गाँव में, हुआ था। कुछ साल बाद वर्धा के सेठ बच्छराजजी ने अपने स्वर्गीय पुत्र की गोद में उनको ले लिया। परिस्थिति के अनुसार उनकी अधिक शिक्षा नहीं हो सकी। मराठी के चौथे दर्जे तक पढ़े, और दो-तीन महीने अँगरेज़ी पढ़कर स्कूल छोड़ दिया। सेठ बच्छराजजी का आदर सरकार भी काफ़ी करती थी, इसलिये सेठ जमनालालजी को लगभग अठारह साल की ही उम्र में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटी मिल गई। बाद में रायबहादुर का भी ख़िताब मिला। प्रांत के गवर्नर भी उनके यहाँ पार्टी में आया करते

थे। लेकिन उनका हृदय तो कहीं और ही था। जब वह महात्मा गांधी के संपर्क में आए, तो उनके विचारों में और भी परिवर्तन हुआ। देश-प्रेम की आग, जो अब तक दबी हुई धीरे-धीरे सुलग रही थी, एकदम भभक उठी। ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटी और रायबहादुरी छोड़कर सन् १६२१ के सत्याग्रह-आंदोलन में वह कूद पड़े। सरकार ने उन्हें अपने हाथ में रखने की कोशिश की, लेकिन सेठजी अपने निश्चय पर अडिग रहे।

यह तो हुआ उनकी जीवनी का थोड़ा-सा परिचय, लेकिन मुझे तो उनके वर्तमान जीवन के विषय में लिखना है। जो लोग उनके संपर्क में आए हैं, उन्हें सेठजी की कुशाग्र बुद्धि का अंदाज़ा लग गया होगा। इतनी थोड़ी शिक्षा पाने पर भी उनका दिमाग़ इतना तेज़ है कि बड़े-बड़े लोगों को, जिन्होंने युनिवर्सिटी की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा पाई है, उनके सामने हार माननी पड़ती है। अभ्यास करके हिंदी, मराठी और गुजराती तो अच्छी तरह जान ही गए हैं, इनके साथ ही अँगरेज़ी पर भी काफ़ी दख़ल हो गया है। अच्छी तरह अँगरेज़ी बोल तो नहीं सकते, लेकिन समझने में कभी-कभी बड़ी योग्यता दिखलाते हैं। उन्होंने बड़ी-बड़ी किताबें तो बहुत कम पढ़ी हैं, लेकिन व्यावहारिक दक्षता में उनको मात करना बहुत कठिन है। न-जाने वह कितने ट्रस्टों, सभाओं और मंडलों का काम सँभालते हैं। हरएक संस्था को बड़ी

योग्यता से चला रहे हैं, और ये संस्थाएँ शिक्षा, समाज, राजनीति, व्यापार इत्यादि सभी भिन्न-भिन्न विषयों की हैं।

परंतु सेठजी ने प्रत्येक क्षेत्र में केवल अपनी तीव्र बुद्धि के द्वारा व्यावहारिक दक्षता हासिल की है। उदाहरण के लिये उनकी व्यापारिक उन्नति को ही लीजिए। सेठ बच्छराजजी ने उनके लिये कुछ ही लाख रुपए छोड़े थे। लेकिन उन्होंने अपनी योग्यता से उस रुपए का इस प्रकार सदुपयोग किया कि उनकी खूब आर्थिक वृद्धि हुई।

कुशाग्र-बुद्धि होने के साथ ही सेठजी का हृदय भी प्रेम और सहानुभूति से भरा है। जो उनके पास रहते हैं, वे उनकी सहृदयता का पूरा अनुभव कर सकते हैं। जो उनके संपर्क में अधिक आ गए हैं, उन्हें उन्होंने बिलकुल अपना कुटुंबी बना लिया है। ईश्वर ने सेठजी को धन, बुद्धि, हृदय—सब कुछ दिया है, लेकिन उन्हें किसी प्रकार का घमंड नहीं। लोक-सेवा को अपना धर्म बना लिया है, अतएव उनका जीवन बिलकुल सीधा-सादा है। उनके कर्मचारी आराम और ठाट से रहते हैं। मेहमानों के लिये एक विशाल अतिथि-गृह बनवा रक्खा है, जिसमें सब प्रकार की सुविधाएँ उपस्थित रहती हैं। लेकिन खुद एक छोटी-सी कोठरी में ही रहते हैं। उसी में सोना, उसी में दिन-भर का सब कार्य करना। पहले तो मोटर इत्यादि सभी आराम की सामग्री रहती थी, अब तो अपने पुराने मोटर को बैलगाड़ी का रूप दे दिया

है। इतने धनी होते हुए भी बिलकुल साधारण व्यक्ति-जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। किसी तरह का ऐश व आराम नहीं करते। उन्हें अपने त्याग का कोई घमंड भी नहीं। यह दिखलाने का प्रयत्न नहीं करते कि सादा जीवन व्यतीत करने में वह बड़ा भारी त्याग कर रहे हैं। यात्रा करते समय अधिकतर तीसरे दर्जे में ही जाना पसंद करते हैं। अपने आराम के लिये अधिक खर्च नहीं करना चाहते, लेकिन देश-सेवा के लिये वह सदैव मुक्त-हस्त रहते हैं।

इतने त्याग और सेवा के होते हुए भी कुछ लोगों ने तिलक-स्वराज्य-फंड के दुरुपयोग करने का आक्षेप उन पर कर ही डाला। सेठजी-जैसे देश-भक्त महापुरुष पर इस प्रकार का मिथ्या दोषारोपण करना कितना घोर पाप है, इसका उल्लेख करने की यहाँ जरूरत नहीं। इस तथा ऐसे आक्षेपों का केवल एक ही कारण हो सकता है, और वह है व्यक्तिगत द्वेष अथवा ईर्ष्या। कुछ लोग कांग्रेस को बदनाम करने के लिये सेठजी की भी बुराई किया करते हैं। लेकिन जो लोग उन्हें जानते हैं, वे यह बात दावे के साथ कह सकते हैं कि देश के सौंपे हुए रुपए का दुरुपयोग करना सेठ जमनालालजी के लिये उतना ही अस्वाभाविक है, जितना पानी के लिये किसी वस्तु को जला देना।

हाँ, सेठजी के दैनिक जीवन के बारे में एक बात और कहनी है। सुबह से शाम तक बहुत-सा काम करने पर भी

वह कभी चिंतित अथवा क्रुद्ध नहीं होते। प्रत्येक काम बड़ी शांति के साथ, सोच-विचारकर करते हैं। उनकी स्मरण-शक्ति भी बड़ी तेज़ है। प्रत्येक बात उन्हें बड़े विस्तार से याद रहती है। ये ही सब गुण हैं, जिनके कारण वह आज देश और समाज की इतनी सेवा कर रहे हैं। भारत में उनसे अधिक धनी तो बहुत सेठ और साहूकार होंगे, लेकिन उनके-जैसे दिमाग़ और हृदयवाले व्यक्ति विरले ही मिलेंगे।

सेठजी सामाजिक सुधार में भी लगे रहते हैं। अपना मंदिर, कुआँ आदि हरिजनों के लिये वर्धा में सबसे पहले उन्होंने खोला था। विवाह-संबंधी सुधार भी बहुत-से किए हैं। उनको देश-प्रेमी और सुयोग्य युवकों तथा युवतियों की परस्पर शादी कराने की बड़ी फ़िक्र रहती है। वह चाहते हैं, वर और वधू दोनो एक ही स्वभाव के हों, और देश तथा समाज की सेवा मिलकर कर सकें। बहुत-से नवयुवकों की इसी प्रकार शादी कराकर उन्होंने एक महत्त्व-पूर्ण समस्या हल की है। विवाह-संबंध कराने में वह कभी अनुचित दबाव नहीं डालते, और बहुधा ऐसे लड़के और लड़कियों की शादी कराते हैं, जिनका परस्पर परिचय हो। ऐसी शादी कराने में उन्हें बड़ी दिलचस्पी रहती है, इसलिये कुछ मित्रों ने मज़ाक़ में उनका नाम 'शादीलाल' रख दिया है।

यहाँ सेठजी के राष्ट्रीय कार्यों का भी संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है। सन् १९२१ में जो राष्ट्र-सेवा

उन्होंने की थी, वह किसी से छिपी नहीं। महात्मा गांधी यदि असहयोग-आंदोलन के मस्तिष्क थे, तो जमनालालजी उनके मेरुदंड। दो वर्ष बाद सेठजी ने नागपुर-झंडा-सत्याग्रह में बड़ा उत्साह और साहस दिखलाया। इस सत्याग्रह के वही मुख्य संचालक थे। सन् १९२० की नागपुर-कांग्रेस में वह खजांची चुने गए थे, और आज तक वह उस कार्य को बड़ी योग्यता से चला रहे हैं। 'गांधी-सेवा-संघ', जो अब राष्ट्र की एक महत्त्व-पूर्ण संस्था है, उन्हीं के उत्साह से संगठित हुआ है। 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' को स्थापित करने में उनका काफ़ी हाथ था। मेरे विचार में शायद ही कोई ऐसी राष्ट्रीय संस्था हो, जिसमें सेठजी किसी प्रकार सहायता न करते हों। 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ' के लिये तो उन्होंने अपना बहुत बड़ा, सुंदर उद्यान और इमारतें, जो अब 'मगनवाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध हैं, दान कर दी हैं। वर्धा का 'सत्याग्रह-आश्रम', जहाँ कुछ वर्ष पहले महात्माजी रहते थे, उन्हीं का बनवाया हुआ है। अब वहाँ 'हिंदू-महिला-मंडल' की ओर से, जिसके सेठजी अध्यक्ष हैं, 'महिला-आश्रम' चल रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी सेठजी ने बहुत कुछ सेवा की है। सन् १९१० में उन्होंने मारवाड़ियों की शिक्षा के प्रबंध के लिये वर्धा में 'मारवाड़ी-विद्यार्थी-गृह' खोला था। बाद में यह संस्था धीरे-धीरे 'मारवाड़ी-शिक्षा-मंडल' के नाम से प्रसिद्ध

हुई, जिसने शिक्षा-क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। वर्धा का 'नव-भारत-विद्यालय' इसी संस्था द्वारा ही चलाया जा रहा है।

हिंदी-प्रचार और साहित्य-क्षेत्र में भी सेठजी पीछे नहीं रहे हैं। आज से अठारह वर्ष पूर्व 'दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा' क़ायम हुई थी। उसमें उनका बहुत कुछ हाथ था। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के गत नागपुर-अधिवेशन में जो हिंदी-प्रचार-समिति बनी थी, उसके भी वह उपाध्यक्ष थे। 'भारतीय साहित्य-परिषद्' के काम में भी सेठजी बहुत सहायता दे रहे हैं। देश की सेवा में उन्होंने सचमुच अपना तन, मन और धन लगा दिया है। राष्ट्रीय कार्यों के लिये लाखों रुपए दान दे चुके हैं। अब तो वह देश-सेवा में इतने लीन हो गए हैं कि अपना निजी कार-बार देखने की भी उन्हें बहुत कम फ़ुरसत मिलती है। यह उन्हीं की निश्चित सेवा का फल है कि वर्धा एक गौरव-पूर्ण राष्ट्रीय केंद्र बन गया है। देश की राजनीति, शिक्षा, साहित्य, ग्राम-उद्योग आदि के संबंध की सभी संस्थाओं के कार्यालय वर्धा में चल रहे हैं। ऐसी दशा में मध्यप्रांत के इस छोटे-से नगर को राष्ट्र का हृदय ही समझना चाहिए, और इस हृदय में देश-भक्त जमनालालजी की विशाल शक्ति विद्यमान है।

इस विषय को समाप्त करने के पहले सेठजी की सुयोग्य पत्नी श्रीमती जानकीदेवी के विषय में भी कुछ लिखना

आवश्यक है। मारवाड़ी-समाज में होते हुए भी इन्होंने समाज-सुधार किया है, और वह अति प्रशंसनीय है। इन्होंने बहुत वर्षों से पर्दा करना छोड़ दिया है, और पर्दा-प्रथा के संबंध में अक्सर व्याख्यान दिया करती हैं। व्याख्यान देने में यह सेठजी से बाज़ी मार ले गई हैं। अधिक शिक्षित न होने पर भी बड़ी निर्भयता और आत्मविश्वास के साथ बोलती हैं। उनके भाषणों में हास्य का पुट भी काफ़ी रहता है। इधर कुछ महीनों से इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। आशा है, यह शीघ्र ही तंदुरुस्त हो जायँगी, और बहुत वर्षों तक देश और समाज की सेवा करती रहेंगी।

सेठजी की माता का भी जीवन जानने योग्य है। लगभग ७५ वर्ष की होते हुए भी वह दिन-भर कुछ-न-कुछ काम करती ही रहती हैं। दिन में कई घंटे चरखे पर सूत कातती हैं, और किसी प्रकार का आराम नहीं चाहतीं। सेठजी-जैसे पुत्र को जन्म देकर उन्होंने अपना जीवन सफल बनाया है।